ओ३म्
आर्याभिविनयः

महर्षि दयानन्द कृत

आर्याभिविनयः

(ऋषि व्याख्या के अतिरिक्त वेदमन्त्रों के शब्दार्थ
व ६ उपयोगी परिशिष्टों सहित)
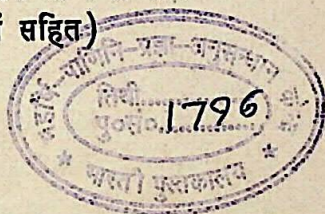
सम्पादक :
प्रेम नाथ बी० ए० एल० एल० बी०,
एडवोकेट, उच्चत्तम न्यायालय,
प्रधान आर्य समाज सोहनगंज दिल्ली
व भूतपूर्व सदस्य सार्वदेशिक न्याय सभा

आर्य प्रकाशन
१२ गान्धी सुकेअर, मल्का गंज,
दिल्ली-७

भूमिका

ऋषि दयानन्द का यह ईश्वर भक्ति का एक अद्वितीय ग्रन्थ है। इस में ऋग्वेद वा यजुर्वेद में से ईश्वर की स्तुति वा प्रार्थना के कुच्छ मन्त्रों का संग्रह किया गया है और ऋषि ने इन की भावपूर्ण अत्युत्तम व्याख्या की है। जिस को पढ़ कर एक शुष्क से शुष्क हृदय भी ईश्वर भक्ति से द्रवित हो जाता है। इस ग्रन्थ से विदित होता है कि आधुनिक काल में ईश्वर का सच्चा भक्त वा उस के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता ऋषि जैसा कोई व्यक्ति नहीं हुआ।

जब भक्त इस ग्रन्थ में से वेदमन्त्रों की ऋषि व्याख्या को पढ़ता है तो वह इन मन्त्रों से इतना प्रभावित हो जाता है कि उसके मन में इन को कण्टस्थ करने व इन के शब्दार्थ जानने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इसी उद्देश को दृष्टि में रखते हुए मैंने इस ग्रन्थ अथवा ऋषि के वेदभाष्य के आधार पर इन मन्त्रों का शब्दार्थ पादटिप्पनी में दिया है और इस को अधिक उपयोगी बनाने के लिये निम्नलिखित ६ परिशिष्ट भी इस पुस्तक के साथ संलग्न कर दिये हैं :—

परिशिष्ट १ : ईश्वर के आठ स्तुति प्रार्थना के मन्त्र (ऋषि के ग्रन्थों के अनुसार अर्थसहित), जो सब यज्ञों के आदि में पढ़े जाते हैं।

परिशिष्ट २ : संध्या तथा उन के मन्त्रों के अर्थ—पंचमहायज्ञविधि अथवा ऋषि के अन्य ग्रन्थों के अनुकूल।

परिशिष्ट ३ : यजुर्वेद के ३४वें अध्याय के शिवसंकल्प के ६ मन्त्र-ऋषि के सत्यार्थ प्रकाश वा वेद भाष्यानुकूल अर्थ सहित।

परिशिष्ट ४ : यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के मन्त्र—ऋषि के वेदभाष्यानुकूल अर्थ सहित।

परिशिष्ट ५ : ओ३म् की व्याख्या—वेदों, उपनिषदों व शास्त्रों के आधार पर।

परिशिष्ट ६ : ईश्वर भक्ति के कुच्छ भजन जिन में ओ३म् ध्वज के दो गीत व एक पंजाबी का गीत भी सम्मिलित हैं।

पुस्तक के अन्त में मन्त्र-सूची (प्रतीक वा पृष्ट सहित) भी दी गयी है ताकि किसी मन्त्र के ढूंढने में असुविधा न हो। आशा है कि ईश्वर भक्तों के लिये यह ग्रन्थ अत्योपयोगी सिद्ध होगा।

तिथि : १० जुलाई, १९७३
तदानुसार २७ आषाढ़, २०३०

भवदीय
प्रेम नाथ

★ ओ३म् ★
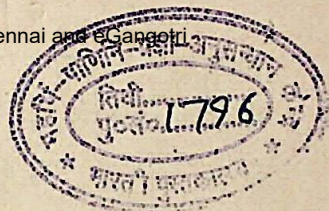
अथार्य्याऽभिविनयोपक्रमणिकाविचारः

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥१॥

चक्षूरामाङ्कचन्द्रेब्दे चैत्रे मासि सिते दले ।
दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥२॥

बहुभिः प्रार्थितैः सम्यग् ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना ।
हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः ॥३॥

वेदस्य मलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया ।
क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति ॥४॥

स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः ।
विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्धनः ॥५॥

विमलं सुखदं सततं सुहितं
जगति प्रततं ननु वेदमतम् ।

मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी
स नरोस्ति सदेश्वरभागधिकः ।।६।।
विशेषभागी ह वृणोति यो हितं
नरः परात्मानमतीव मानतः ।
अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया
स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ।।७।।

व्याख्यान—जो परमात्मा, सब का आत्मा, सत चित् आनन्द-स्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्य वाला हमारा इष्ट देव है वह हम को सहाय नित्य देवे, जिससे महा कठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे ! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे ।।१।।

संवत् १९३२ मिति चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ।।२।।

बहुत सज्जन लोग, सब के हितकारक धर्मात्मा विद्वान् विचारशील जनों नें मुझ से प्रीति से कहा तब सब लोगों के हित यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो इसलिए इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ।।३।।

इस ग्रन्थ में केवल दो वेदों के मूलमन्त्रों का प्राकृत भाषा में व्याख्यान किया है जिससे सब लोगों को सुखपूर्वक बोध हो और ब्रह्मज्ञान यथार्थ हो ।।४।।

इस ग्रन्थ में वेदमन्त्रों से सब सुखों की बढ़ाने वाली परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना तथा धर्म्मादि विषय का वर्णन किया है ॥५॥

जो ब्रह्म विमलसुखकारक, पूर्ण काम, तृप्त, जगत में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है। जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सबसे सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है ॥६॥

जो नर इस ससांर में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मा, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है वही जन अतोय भाग्यशाली है क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्य विद्या से सम्पूर्ण दुःखों से छूट के परमानन्द परमात्मा की प्राप्तिरूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है और दुःखसागर से छूट जाता है परन्तु जो विषय लम्पट, विचार रहित विद्या, धर्म, जितेन्द्रियता, सत्सङ्ग रहित, छल, कपट, अभिमान, दुराग्रहादि दुष्टतायुक्त है सो वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है ॥७॥

इसलिए जन्म मरण ज्वरादि पीड़ाओं से पीड़ित होके सदा दुःखसागर में ही पड़ा रहता है, इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर होके इस लोक (संसार व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इनकी सिद्धि यथावत् करें यही मनुष्यों की कृतकृत्यता है। इस आर्याभिविनय ग्रन्थ में मुख्यता से वेद मन्त्रों का परमेश्वर सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है, दोनों अर्थ करने से ग्रंथ बढ़ जाता इससे व्यवहार विद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तरपूर्वक परमार्थ

और व्यवहार ये दोनों अर्थ सप्रमाण किए जायेंगे जैसे—"तदेवाग्नि-स्तदादित्यस्तद्वायु" इत्यादि, य० संहिता प्र०, "इन्द्रं मित्रं वरुणम्" इत्यादि, ऋ० सं० प्र०, "बृहस्पतिर्वै ब्रह्म, गणपतिर्वै ब्रह्म, प्राणो वै ब्रह्म, आपो वै ब्रह्म, ब्रह्मह्यग्निम्" इत्यादि, शतपथ ऐतरेयब्रह्मणादि प्र०। और "महान्तमेवात्मानम्" इत्यादि निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है। तथा 'मुखादग्निरजायत" इत्यादि, य०सं०प्र०, "वायोरग्निः" इत्यादि, ब्राह्मण प्र० तथा "अग्निरग्रणीर्भ-यतीत" इत्यादि निरुक्त प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूप गुण वाला दाह प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि वह लिया जाता है। इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायेंगे जिससे सायणादिकृत भाष्य-दोष और उसके अनुसार अंग्रेजी कृतार्थदोष रूप वेदों के कलङ्क निवृत्त हो जायेंगे और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से, वेदों का महत्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी। इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहार-शुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे जिससे नास्तिक और पाखण्डमतादि अधर्म में मनुष्य न फंसें। किञ्च सब प्रकार के मनुष्य अति उत्तम हों और सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा सब मनुष्यों पर हो। जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़ श्रेष्ठता को स्वीकार करें। यही मेरी परमात्मा से प्रार्थना है सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा।

॥ इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्णा ॥

✤ ओ३म् ✤

॥ तत्सत्परब्रह्मणे नमः ॥

अथार्याभिविनयप्रारम्भः

ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्य्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ १ ॥

ऋ० अ० १। अ० ६। व० १८। मं० ९*॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण, हे अज निराकार सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्, हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार, हे सनातन, सर्वमङ्गलमय, सर्वस्वामिन, हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहायक, हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक, हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक, हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक, हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद, हे विश्वासविलासक, हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार, हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद, हे

---

*यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत् जान लेना क्योंकि आगे केवल अंक संख्या लिखी जाएगी। ऋ० १। ६। १८। ९॥ इन से अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र जान लेना।

---

१. *शब्दार्थ*— [ओं] परमात्मा [मित्रः] सर्वथा सबका निश्चित मित्र [नः] हमारे लिए [शम्] सर्वदा सत्यसुखदायक (हो)। [वरुणः]

सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक, हे दरिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक, हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, हे सुधर्मसुप्रापक. हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद, हे सन्ततिपालक, धर्म्मसुशिक्षक, रोगविनाशक, हे पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद, हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न, गर्वकुक्रोध-कुलोभविनाषक, हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदा-नन्दक, परमेश्वर, व्यापक, सूक्ष्माच्छेद्य, हें अजरामृताभयनिबन्धा-नादे ! हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्व-द्विलासक, इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य, हे मङ्गलप्रदेश्वर ! आप सर्वथा सब के निश्चित मित्र हो, हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो, हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर ! आप वरुण अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, सो आप हमको परसुखदायक हो, हे पक्षपातरहित, धर्म्मन्यायकारिन् ! आप अर्य्यमा (यमराज) हो इससे हमारे लिये न्याययुक्त सुख देने वाले आप ही हो, हे परमैश्वर्य्यवन्, इन्द्रेश्वर ! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिए। हे महाविद्या-वाचोधिपते, बृहस्पते, परमात्मन् ! हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देने वाले आप ही हो, हे सर्वव्यापक, अनन्त पराक्रमेश्वर,

---

सर्वोत्कृष्ट परमोत्तम स्वीकरणीय वरेश्वर (हमारे लिए) [शम्] परम सुखदायक (हों), [अर्य्यमा] पक्षपात रहित धर्मन्यायकारी यमराज [नः] हमारे लिए [शम्] न्याययुक्त सुख देने वाला (हो), [इन्द्रः] परमैश्वर्यवान् [नः] हमारे लिए [शम्] परमैश्वर्ययुक्त स्थिर सुख देने वाला (हो), [बृहस्पति] महाविद्यावाचोऽधिपति, बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी (हमारे लिए) [शम्] सबसे बड़े सुख का देने वाला (हो), (तथा) [विष्णुः] सर्वव्यापक [उरुक्रमः] अनन्त पराक्रमेश्वर [नः] हमारे लिए [शम्] अनन्त सुख देने वाला हो ॥

विष्णो ! आप हमको अनन्त सुख देओ जो कुछ माँगेंगे सो आपसे ही हम लोग माँगेंगे। सब सुखों का देने वाला आपके बिना कोई नहीं है सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है। अन्य किसी का नहीं क्योंकि सर्वशक्तियान् न्यायकारी दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हमको सुख देंगे यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है ॥ १ ॥

स्तुति विषय

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ २ ॥

ऋ० १ । १ । १ । १ ॥

व्याख्यान—हे वन्द्येश्वराग्ने ! आप ज्ञानस्वरूप हो आपकी मैं स्तुति करता हूं।

सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है, हे मनुष्यो ! तुम लोग इस प्रकार से मेरी स्तुति प्रार्थना और उपासनादि करो जैसे पिता व गुरु अपने पुत्र व शिष्य को शिक्षा करता कि तुम पिता व गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्तमान

---

२. *शब्दार्थ*—(मैं) [अग्निम्] ज्ञानस्वरूप परमेश्वर [पुरोहितम्] सब जगत के हितसाधक [यज्ञस्य] ज्ञान यज्ञादि के (लिए) [देवम्] पूज्यतम वा कमनीयतम प्रकाशस्वरूप, [ऋत्विजम्] सब ऋतुओं के रचक और उनमें यथावत सुख के देने वाले, [होतरम्] सब जगत को समस्त योग और क्षेम के देने वाले तथा प्रलय समय सब जगत् का होम करने वाले, [रत्नधातमम्] पृथिव्यादि रमणीय लोकों तथा सुवर्णादि रत्नों के धारण वाले की (ईडे) स्तुति करता हूँ॥

करना वैसे सब के पिता और परम गुरु ईश्वर ने हमको कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है जिससे हमको व्यवहार ज्ञान और परमार्थ ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सब का आदि कारण ईश्वर है वैसे परम विद्या वेद का भी आदिकारण ईश्वर है।

हे सर्वहितोपकारक ! आप "पुरोहितम्" सब जगत के हितसाधक हो। हे यज्ञदेव ! सब मनुष्यों के पूज्यतम् और ज्ञान-यज्ञादि के लिए कमनीयत हो, "ऋत्विजम्" सब ऋतु वसन्त आदि के रक्षक अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिए उस सुख के सम्पादक आप ही हो, 'होतारम्" सब जगत को समस्त योग और क्षेम के देने वाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करने वाले हो, "रत्नधातमम्" रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण रचन करने वाले तथा अपने सेवकों के लिए रत्नों के धारण करने वाले एक आप ही हो। हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! इसलिए मैं वारम्वार आपकी स्तुति करता हूं इसको आप स्वीकार कीजिए, जिससे हम लोग आपके कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें ॥ २ ॥

प्रार्थना विषय

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

ऋ० १ । १ । १ । ३ ॥

व्याख्यान—हे महादातः, ईश्वराग्ने ! आपकी कृपा से स्तुति करने वाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन

३. शब्दार्थ— मनुष्य [अग्निना] ईश्वर की उपासना अथवा उस की आज्ञा पालन से [एव] ही [दिवेदिवे] दिन प्रतिदिन [पोषम्] महा-

को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन "पोषमेव" महापुष्टिय करने और सत्कीर्ति को बढ़ाने वाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढाङ्ग, धर्मात्मा, न्याययुक्त अत्यन्त वीर पुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवण रत्नादि तथा चक्रवर्ती राज्य और विज्ञान रूप धन को पाप्त होऊँ तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूं ॥ ३ ॥

स्तुति विषय

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ ४ ॥

ऋ० १ । १ । १ । २ ॥

व्याख्यान—हे सब मनुष्यो के स्तुति करने योग्य ! ईश्वराग्ने ! "पूर्वेभिः" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "ऋषिभिः" मन्त्रार्थं देखने वाले विद्वान् और "नूतनैः" वेदार्थ पढ़ने वाले नवीन ब्रह्मचारियों से "ईड्यः" स्तुति के योग्य "उत" और जो हम लोग मनुष्य विद्वान वा मूर्ख हैं उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिए दिव्यगुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो आप ही सबके इष्टदेव हो ॥ ४ ॥

पुष्टि करने वाले [यशसम] सत्कीर्ति के बढ़ाने वाले [वीरवत्तमम्] विद्या व शूरवीरता के देने वाले [रयिम्] विद्या सुवर्ण आदि उत्तम धन को (अश्नवत्) प्राप्त करता है ॥

४. शब्दार्थ—[अग्निः] स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर [पूर्वेभिः] प्राचीन [ऋषिभिः] मन्त्रार्थ देखने (प्रथम जानने) वाले विद्वानों [उत] तथा [नूतनैः] नवीन ब्रह्मचारियों (वेदार्थ पढ़ने वालों) से [ईड्य] (नित्य) स्तुति के योग्य (है) [सः] वह (परात्मा) [देवान्] उत्तम विद्यादि दिव्य गुणों को [एह] इस संसार में [वक्षति] (हमें) प्राप्त कराएँ ॥

स्तुति विषय

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ।। ५ ।।

ऋ० १ । १ । १ । ५ ।।

व्याख्यान—हे सर्वदृक् ! सबको देखने वाले, "क्रतु" सब जगत् के जनक, "सत्यः" अविनाशी अर्थात् कभी जिनका नाश नहीं होता. "चित्रश्रवस्तमः" आश्चर्य्यश्रवणादि आश्चर्य्यगुण, आश्चर्य-शक्ति आश्चर्यरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो जिन आपके तुल्य वा आपसे बड़ा कोई नहीं है। हे जगदीश ! "देवभिः" दिव्य गुणों के सह वर्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हों सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हय और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो वह राज्य आपका ही है हम तो केवल आपके पुत्र तथा भृत्यवत् हैं ।। ५ ।।

प्रार्थना विषय

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ।। ६ ।।

ऋ० १ । १ । २ । १ ।।

व्याख्यान—हे "अङ्ग" मित्र ! जो आपको आत्मादि दान

५. *शब्दार्थ* — [अग्निः] स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर [होता] सबका दाता [कविः] सबको देखने वाला तथा वेदों का उपदेष्टा [क्रतुः] सब जगत् का कर्त्ता [सत्यः] अविनाशी [चित्रश्रवस्तमः] आश्चर्य अर्थात् अत्युत्तम श्रवणादि गुण वाला [देवः] स्वप्रकाशस्वरूप वा सर्वप्रकाशक ईश्वर [देवेभिः] विद्वानों के साथ समागम से [आ] अच्छे प्रकार [गमत्] प्रकाशित होवे ।।

६. शब्दार्थ—[अङ्गिरः] हे प्राणप्रिय [अङ्ग] सर्वमित्र [अग्ने]

करता है, उसको "भद्रम्" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्व देते हो। हे "अङ्गरः" प्राणप्रिय! यह आपका सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना, यही आपका स्वभाव हमको अत्यन्त सुखकारक है आप मुझ को ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिए जिससे सब दुःख दूर हों। हमको सदा सुख ही रहे ॥ ६ ॥

स्तुति विषय

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ७ ॥

ऋ० १ । १ । ३ । १ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल परेश वायोदर्शनीय ! आप अपनी

परमेश्वर [यत्] जिस हेतु से [दाशुषे] आप को आत्मादि सर्वस्व दान करने वाले के लिऐ [त्वम्] आप [भद्रम्] व्यावहारिक व पारमार्थिक सुख [करिष्यसि] दान करते हो [तत्] सो यह [तवेत्] आपका ही [सत्यम्] सत्यव्रत है ॥

७. *शब्दार्थ*—[दर्शते] हे दर्शनीय [वायो] अनन्त बलेश्वर (आप) [आयाहि] हम लोगों को प्राप्त हूजिए अर्थात् हमारे हृदय में प्रकाशित हूजिए। (हमने) [इमे] यह [सोमाः] सोमलतादि ओषधियों के उत्तम रस (अथवा श्रद्धा भक्ति से सम्पादित श्रेष्ठ पदार्थ) [अरङ्कृता] उत्तम रीति से सुभूषित करके बना रक्खे हैं [तेषाम्] इन सब (पदार्थों को) [पाहि] सर्वात्मा से पान करो अर्थात् स्वीकार करो (अथवा इनकी रक्षा भी कीजिए) (और हमारी) [हवम्] पुकार अर्थात् स्तुति प्रार्थना को [श्रुधी] सुनिये ॥

कृपा से ही हमको प्राप्त हो। हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्ल्यादि) ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिए "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाए हैं, और वे सब आपके समर्पण किए गए हैं उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो)। हम दीनों की दीनता सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज़ समर्पण करता है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर होओ ॥७॥

प्रार्थना विषय

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८ ॥

ऋ० १।१।६।१०॥

व्याख्यान—हे वाक्पते! सर्वविद्यामय! हमको आपकी कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो "वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्तमान "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त "पावका" पवित्रस्वरूप और पवित्र करने वाली सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्तमान "वसु" निधिस्वरूप

८. *शब्दार्थ*—हे वाक्पते, सर्व विद्यामय ईश्वर! [नः] हमारी [सरस्वती] वाणी सर्वशास्त्र विज्ञान युक्त [पावका] पवित्र सत्य भाषणमय (तथा) [वाजेभिः] उत्कृष्ट अन्नादि के साथ वर्तमान [वाजिनीवती] सर्वोत्तम क्रिया विज्ञान युक्त [धिया] परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्तमान [वसु] निधि स्वरूप (होकर) [यज्ञम्] विज्ञान व कर्मरूप यज्ञ को [वष्टु] कामसिद्धि प्रकाशित करने वाली होवे॥

यह वाणी "यज्ञंवष्टु" सर्वशास्त्रवोध और पूजनीय आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और महापाण्डित्य युक्त हों ॥ ८ ॥

स्तुति विषय

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ९ ॥

ऋ० १ । १ । ९ । २ ॥

व्याख्यान—हे परात्पर परमात्मन् ! आप "पुरूतमम्" अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रुविनाशक हो तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के "ईशानं" स्वामी और उत्पादक हो, "वार्य्याणाम्" वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो, "सोमे" और उत्पत्ति-स्थान संसार आपसे उत्पन्न होने से "इन्द्रम्" परमैश्वर्य्यवान् आपको (अभिप्रगायत*) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें जिससे आपकी कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य्य बढ़ता जाए और परमानन्द को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

*इस शब्द की अनुवृत्ति मन्त्र १।१।९।१ से आई है।

९. *शब्दार्थ*— हे परमात्मम् ! [पुरूतमम्] अत्यन्त उत्तम और सर्वशत्रु विनाशक (तथा) [पुरूणाम] बहुविध जगत् के पदार्थों (तथा) [वार्य्याणाम्] श्रेष्ठ परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के [ईशानम] स्वामी वा उत्पादक (तथा) [सोमे] उत्पत्ति स्थान संसार (वा परमाणु सम्बन्ध बहुविध पदार्थ) [सुते] आप से गत्पन्न होने से [इन्द्रम्] परमैश्वर्यवान् आपकी (हम) [सचा] आपके साथ संयुक्त हो कर, प्रीतिपुर्वक (हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें) ॥

प्रार्थना विषय

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।। १० ।।

ऋ० १।६।१५।५।।

व्याख्या—हे सर्वाधिस्वामिन्! आप ही चर और अचर जगत् के ईशान् (रचने वाले) हो, "धियंजिन्वम्" सर्वविद्यामय विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करने वाले प्रीणनीयस्वरूप "पूषा" सब के पोषक हो, उन आपका हम "नः अवसे" अपनी रक्षा के लिए "हूमहे" आह्वान करते हैं। "यथा" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि व रक्षा के लिए "अदब्धः रक्षिता" निरालस

---

१०. *शब्दार्थ*—हे मनुष्यो! [वयम्] हम लोग [अवसे] अपनी रक्षा के लिए [तम्] उस [ईशानम्] सब सृष्टि के रचने वाले [जगतः] जङ्गम अर्थात् चर (तथा) [तस्थुषः] अचर अर्थात् स्थावर जगत् के [पतिम्] पालन कर्त्ता व स्वामी [धियं जिन्वम्] सर्व विद्यामय बुद्धि के प्रकाशित करने वाले (परमात्मा) को [हूमहे] आह्वान अर्थात् हृदय से बुलाते हैं। [सः] वह [पूषा] सब का पोषणकर्ता परमेश्वर [यथा] जैसे [नः] हमारे [वेदसाम्] विद्यादि धनों की [वृधे] वृद्धि के लिए [रक्षिता] रक्षा करते हारा (होवे वैसे) [स्वस्तये] (हमारी) स्वस्थता के लिए भी [अदब्धः] निरालस [पायुः] (निरन्तर) सबका रक्षक [असत्] होवे ।।

रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिए "पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो। आप से पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों ।। १० ।।

स्तुति विषय

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्या सप्त धामभिः ।। ११ ।।

ऋ० १। २। ७। १६ ।।

व्याख्यान हे "देवाः" विद्वानो ! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिए, पृथ्वी से लेके सप्तविध लोक "धामभिः" अर्थात् ऊँचे नीचे स्थानों से संयुक्त बनाए तथा गायत्री आदि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भो बनाया। उन लोकों के साथ वर्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उसी सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे। हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से

---

११. *शब्दार्थ*—[यतः] जिस (सामर्थ्य) से [विष्णुः] सर्वव्यापक परमेश्वर ने [पृथिव्याः] पृथिवी से लेकर [सप्तधामभिः] सात अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश परमाणु वा प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के साथ वर्तमान् लोकों को [विचक्रमे] विविध प्रकार से रचा है [देवाः] हे विद्वानों ! [अतः] उसी (सामर्थ्य) से (आप) [नः] हमारी [अवन्तु] रक्षा करें।।

हमारी रक्षा करो। कैसा है वह विष्णु ? जिसने इस सब जगत् को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है, उसकी नित्य भक्ति करो ॥ ११ ॥

प्रार्थना विषय

पाहि नो अग्ने रक्षसः
पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो
बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १२ ॥

ऋ० १ । ३ । १० । १५ ॥

व्याख्यान—हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस हिंसाशीलदुष्टस्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" पालना करो, "धूर्तेरराव्णः" कृपण जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो, जो हमको मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेजोवलवत्तम ! उन सब से हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

---

१२. *शब्दार्थ*—[बृहद्भानो] हे महातेज [यविष्ठ्य] बलवत्तम् [अग्ने] सर्वशत्रुदाहकेश्वर तथा सर्वांगुणी तथा सर्वाभिरक्षक ! [नः] आप हमारी [रक्षसः] राक्षस अर्थात् हिंसाशील दुष्ट स्वभाव मनुष्य से (वा) [धूर्तेः] विश्वास घातक कपटी (वा) [अराव्णः] दान धर्मरहित कृपण मनुष्य से [पाहि] रक्षा करो [उत] और [रिषतः] व्याघ्रादि हिंसक प्राणियों से [वा] अथवा [जिघांसतः] हमें मारने की इच्छा करने वाले से भी (हमारी) [पाहि] रक्षा करो ॥

स्तुति विषय

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः
स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽ-
पः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ।। १३ ।।

ऋ० १।४।१४।१२ ।।

व्याख्यान—हे परमैश्वर्य्यवन् परमात्मन् ! आकाश लोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान हो के दुष्टों के मन को घर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिये "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो ; इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं किञ्च "दिवम्" परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुखविशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे

१३. *शब्दार्थ*—हे परमैश्वर्यवान् परमात्मन् ! [त्वम्] आप [अस्य] इन [रजसः] पृथिव्यादि सब लोकों (तथा) [व्योमनः] आकाश के भी [पारे] पार अर्थात् परे [स्वभूत्योजाः] अपने अनन्त ऐश्वर्य वा पराक्रम से विराजमान हो के [धृषन्मनः] दुष्टों के मन को घर्षण अर्थात् तिरस्कार करते हुए [अवसे] (हमारी) रक्षा के लिए [परिभूः] सब पर वर्तमान् और सब को [एषि] प्राप्त हो रहे हो (किञ्च आपने) [ओजसः] पराक्रम (वा) [प्रतिमानम्] अवधि सहित [भूमिम्] भूमि (वा) [स्वः] सुख विशेष मध्यस्थ लोक (वा) [दिवम्] परमाकाश अथवा द्युलोक सूर्यादिलोक (वा) [अपः] अन्तरिक्ष लोक वा जल (इन सब) को [आचकृषे] अच्छी प्रकार से रचा है (वा) इन सब को यथावत् धारण कर रहे हो, आप की ही हम सब लोग उपासना करें ।।

हो, "परिभूः एषि" सब पर वर्त्तमान और सब को प्राप्त हो रहे हो "आदिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक "अप:" अन्तरिक्षलोक और जल इन सब के प्रतिमान (परिमाण) कर्ता आप हो हो, तथा आप अपरिमेय हो, कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ॥ १३ ॥

प्रार्थना विषय

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो
बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता
विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ १४ ॥

ऋ० १ । ४ । १० । ८ ।

व्याख्यान—हे यथायोग्य सब को जाननेवाले ईश्वर! आप "आर्यान्" विद्या धर्म्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को

---

१४. शब्दार्थ—हे सर्वज्ञेश्वर! आप [आर्यान्] आर्यों अर्थात् विद्वान धार्मिक परोपकारी मनुष्यों को [विजानीहि] विशेष रूप से जानते हो [च] और [ये] जो [दस्युवः] मूर्ख, अधर्मी, स्वार्थी, चोर, डाकू वा [बर्हिष्मते] सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करने वाले मनुष्यों को [रन्धय] समूल नष्ट कर दीजिए (तथा) [अव्रतान्] सत्यभाषण ब्रह्मचर्यादि व्रतों से रहित अनाचारियों को [अशासत्] (आप) यथायोग्य शासन करें (तथा) [यजमानस्य] उत्तम यज्ञ के कर्ता के [शाकी] शक्तिदाता अर्थात् परम शक्ति देने वाले (वा) [चोदिता] प्रेरक [भव] हो तथा मैं भी [सधमादेषु] उत्कृष्ट स्थानों में (निवास करता हुआ) [ते] आप की (आज्ञानुकूल) [ता] उन [विश्वाः] सब (उत्तम कार्यों की) [इत] ही [चाकन] कामना करता हूँ ॥

जानो "ये च दस्यवः" और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादिदोषयुक्त, उत्तम कर्म्म में विघ्न करनें वाले, स्वार्थी स्वार्थसाधन में तत्पर, वेदविद्याविरोधी, अनार्य (अनाड़ी) मनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करनें वाले हैं इन सब दुष्टों को आप "रन्धय" (समूलान् विनाशय) मूलसहित नष्ट कर दीजिये और "शासदव्रतान्" ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संयासादि धर्म्मानुष्ठानव्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों को यथा-योग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो) जिससे वे भी शिक्षायुक्त हो के शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त हो जाय किंवा हमारे वश में ही रहें "शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो, मैं भी "सधमादेषु" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "विश्वेत्ता ते" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्ताम कर्म्मों की "चाकन" कामना करता हूं सो आप पूरी करें ॥ १४ ॥

स्तुति विषय

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो
न सिन्धवो रजसो अन्तमानुशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत
एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १५ ॥

ऋ० १ । ४ । १४ । १४ ॥

व्याख्यान—हे परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर ! आप इन्द्र हो, हे मनुष्यो !

---

१५. शब्दार्थ—हे मनुष्यो ! [यस्य] जिस (परमेश्वर) की

जिस परमात्मा का अन्त इतना है यह न हो उसको व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सकता, तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादि लोक सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी मध्य निकृष्टलोक ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते क्योंकि "अनुव्यचः" वह सब के बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है तथा "न सिन्धवः" अन्तरिक्ष में जो दिव्यजल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पा सकते "नोत स्ववृष्टिं मदे" वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली गर्जन आदि भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते❀ हे परमात्मन्! आप का पार कौन पा सके? क्योंकि "एकः" एक (अपने से भिन्न सहायरहित) स्वसामर्थ्य से हो "विश्वम्" सब जगत् को "आनुषक्" आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आपने ही उत्पन्न किया है, फिर जगत् के

❀जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करे, वैसे मेघ का भी दृष्टान्त जानना।

[अनुव्यचः] सर्वत्र अनुस्यूत व्याप्ति [अन्तम्] अन्त को [न] न [द्यावापृथिवी] द्युलोक (सूर्यादि अथवा सर्वोपरि आकाश) तथा पृथिव्यादि लोक और) [न] न ही [सिन्धवः] अन्तरिक्षस्थ दिव्यजल वा समुद्र (तथा) [रजसः] (अन्य) सब लोक लोकान्तर [अन्तम्] अन्त को [आनशुः] पा सकते हैं [उत] और [न] न ही [मदे] मद में (मग्न हुए २ के समान) [स्ववृष्टिम्] अपनी वृष्टि (प्रहार) से [युध्यत] युद्ध करता हुआ (मेघ तथा बिजली गर्जन) [अस्य] इस ईश्वर का (पार पा सकते हैं)। [एकः] अकेला (असहाय वह परमात्मा) (स्वसामर्थ्य से ही) [अन्यत्] अपने से भिन्न (प्रकृति से) [विश्वम्] सब जगत् को (में) [आनुषक्] व्याप्त होता हुआ [चकृषे] उत्पन्न करता अर्थात् रचता है॥

पदार्थ आपका पार कैसे पा सकें तथा (अन्यत्) आप जगत् रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और लय यथाकाल में करते हो इससे आप का सहाय हम लोगों को सदैव है ।। १५ ।।

प्रार्थना विषय

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना
विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे
विदा देवेषु नो दुवः ।। १६ ।।

ऋ० १ । ३ । १० । १४ ।।

व्याख्यान - हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म आप (ऊर्ध्वः) सब से उत्कृष्ट हो, हमको कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो तथा ऊर्ध्वदेश

१६. *शब्दार्थ*—हे सर्वोपरि विराजमान् परब्रह्मन् (आप) [ऊर्ध्वः] सबसे उत्कृष्ट हो (अतः हमको भी उत्कृष्ट गुण वाले करो)। (हे सर्वपाप प्रणाशकेश्वर)। [नः] हमको [केतुना] प्रकृष्ट ज्ञान विज्ञान देकर इस सकल संसार का (भी नित्य पालन करो) (तथा) [अत्रिणम्] (हमारे दुष्ट राक्षस) शत्रुओं को [सन्दह] अच्छे प्रकार जलाओ अर्थात् सम्यक् भस्मीभूत करो। (हे कृपानिधेः) [नः[हमको [चरथाय] (सर्वत्र इच्छानुकूल आनन्द पूर्वक) विचरण (वा) [जीवसे] (आरोग्य तथा सर्वत्र सुखी) जीवन के लिए [ऊर्ध्वान्] सर्वोत्तम गुण वाले [कृधि] करो (तथा) [नः] हमें [देवेषु] विद्वानों के बीच [विदा] विद्यादि उत्तम धन की प्राप्ति के लिए (उनकी) [दुवः] सेवा को (प्राप्त कराओ) अर्थात् विद्वानों की सेवा से हम विद्यादि उत्तम धन को प्राप्त करें ।।

में हमारी रक्षा करो। हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर! हम को "केतुना" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान दे के "अंहसः" अविद्यादि महापाप से "नि पाहि" (नितरां पाहि) सदैव अलग रक्खो। तथा "विश्वम्" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो। हे सत्यमित्र न्यायकारिन! जो कोई प्राणी "अत्रिणम्" हम से शत्रुता करता है उसको और काम क्रोधादि शत्रुओं को आप "सन्दह" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ)। "कृधी न ऊर्ध्वान्" हे कृपानिधे! हमको विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविधधन, ऐश्वर्य विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेश-सुखसंपादनादि गुणों में सब नरदेहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "चरथाय, जीवसे" सब से अधिक आनन्द, भोग, सब देशों में अव्याहतगमन (इच्छानुकूल जाना आना), आरोग्य, देह, शुद्ध मानसबल और विज्ञान इत्यादि के लिये हमको उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो "विदा", विद्यादि उत्तमोत्तम धन "देवेषु" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी प्रतिष्ठायुक्त सदैव हमको रक्खो ।। १६ ।।

स्तुति विषय

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष-
मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना
अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।। १७ ।।

ऋ० १ । ६ । १६ । १० ।

व्याख्यान—हे त्रैकाल्याबाधेश्वर! "अदितिर्द्यौः" आप सदैव

---

१७. शब्दार्थ—(वह परमेश्वर) [अदितिः] अविनाशी [द्यौः]

विनाशरहित तथा स्वप्रकाशरूप हो, "अदितिरन्तरिक्षम" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सब के अधिष्ठाता हो, "अदितिर्माता" आप प्राप्तमोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाशरहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने वाले हो, "स पिता" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और "स पुत्रः" सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करने वाले हो, "विश्वे देवा अदितिः" सब दिव्यगुण (विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करने वाले) आप अविनाशी परमात्मा ही हैं, "पंच जना अदितिः" पच प्राण, जो जगत् के जीवनहेतु वे भी आप के रचे और आप के नाम भी हैं, "जातमदितिः" वही एक ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत है और सब कभी प्रादुर्भूत कभीं अप्रादुर्भूत (विनाशभूत) भी हो जाते हैं, "अदितिर्जनित्वम्" हे अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् के (जनित्वं) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं॥ ॥ १७ ॥

॥ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं परन्तु यहाँ ईश्वराभिप्रेत से ही अर्थ किया, सो सप्रमाण जानना चाहिये ॥

स्वप्रकाशस्वरूप [अदितिः] अविकृत अर्थात् विकार रहित [अन्तरिक्षम्] आकाश की (न्याईं सब में व्यापक हो रहा है) (तथा वही ईश्वर) [अदितिः] (मुक्त जीवों को अविनश्वर सुख देने वाला (वा) [माता] उनका अत्यन्त मान करने वाला (है)। [सः] वही (परमात्मा) [पिता] सब जीवों का जनक (वा) पालक (है) (तथा) [सः] वही [पुत्रः] (मुक्त धर्मात्मा विद्वानों को) सब दुःखों से पवित्र व रक्षण करने वाला (है) (तथा वही) [अदितिः] अविनाशी (परमात्मा) [विश्वे] समस्त सब [देवाः] दिव्य गुण [पञ्चजनाः] पाँच (प्राणों) का रचने वाला (है) [अदितिः] (वह) अविनाशी (परमात्मा) [जातम्] (सदा) प्रादुर्भूत (है) अर्थात् जन्म मरण रहित (सदा एक रस अखण्डित पहले से ही वर्तमान है)। (तथा) [अदितिः] (वही) अविनाशी स्वरूप [जनित्वम्] सबके जन्म वा उत्पत्ति का (निमित्त कारण है) ॥

प्रार्थना विषय

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ।। १८ ।।

ऋ० १ । ६ । १७ । १ ।।

व्याख्यान—हे महाराजाधिराज परमेश्वर! आप हमको "ऋजु०" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्ती राजाओं को नीति को "नयतु" कृपादृष्टि से प्राप्त करो, आप "वरुणः" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हमको वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ तथा सबके मित्र शत्रुतारहित हो हमको भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिए तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान हो हमको भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति दे के साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये तथा आप "अर्यमा" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़ के न्याय में वर्त्तमान हो सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों को यथायोग्य व्यवस्था करने वाले हो सो हमको भी आप तादृश करें जिससे "देवैः सजोषाः" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तमप्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करने वाले हों, हे कृपासिन्धो भगवान ! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त हो के हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ।। १८ ।।

---

१८. *शब्दार्थ*—[वरुणः] सर्वोत्कृष्ट (सर्वोत्तम), [मित्रः] सर्वमित्र (सर्वोपकारी), [विद्वान्] सर्वज्ञ (अनन्तविद्य), [अर्यमा] न्यायकारी [देवैः] विद्वानों (वा दिव्य गुणों) के साथ [सजोषा] उत्तम प्रीतियुक्त (परमेश्वर) [नः] हमें [ऋजुनीति] सरल शुद्ध नीति को [नयतु] प्राप्त करावे ।।

प्रार्थना विषय

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ १९ ॥

ऋ० १ । ६ । १९ । ५ ॥

व्याख्यान—हे सोम राजन् सत्पते परमेश्वर ! तुम सोम, सबका सार निकालने हारे प्राप्यस्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करने वाले हो, तुम्हीं सबके राजा "उत" और "वृत्रहा" मेघ के रचक, धारक और मारक हो। भद्रस्वरूप भद्र करने वाले और "क्रतुः" सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥ १९ ॥

प्रार्थना विषय

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ २० ॥

ऋ० १ । ६ । २० । ८ ॥

व्याख्यान—हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायतः" जो कोई प्राणी हममें पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों "विश्वतः" उन सब प्राणियों से हमारी "रक्ष" रक्षा करो। जिसके

---

१९. शब्दार्थ—[सोम] हे शान्तात्मन् (परमेश्वर) [त्वम्] आप [सत्पतिः] सत्पुरुषों के प्रतिपालक [असि] हो तथा [त्वम्] आप [वृत्रहा] मेघ के (रचक, धारक वा) मारक (अथवा दुष्ट शत्रुओं के हन्ता) हो। [त्वम्] आप [भद्रः] भद्रस्वरूप वा भद्रकारक (कल्याण कारक) तथा [क्रतुः] सब जगत् के कर्त्ता [असि] हो ॥

२०. शब्दार्थ—[सोम] हे सोम सर्वसुहृद [राजन्] हे सर्व

आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होता किन्तु हमको आपकी सहायता से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा। जो आपका मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दुःख क्योंकर हो ॥ २० ॥

प्रार्थना विषय

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २१ ॥

ऋ० १।२।७।२० ॥

व्याख्यान—हे विद्वानो और मुमुक्षु जीवो ! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सबके जानने योग्य, जिसको प्राप्त होके पुर्णानन्द में रहते हैं फिर वहां से शीघ्र दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सबके हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं वह परमेश्वर का पद है किस दृष्टान्त से कि जैसे आकाश में "चक्षु" नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "दिवीव, चक्षुराततम्"

राजकेश्वर [त्वम्] आप [विश्वतः] सब [अघायतः] पापी वा पापेच्छुक प्राणियों से [नः] हमारी [रक्ष] रक्षा करो [त्वावतः] आप जैसे का [सखा] मित्र [न] नहीं [रिष्येत्] विनष्ट अर्थात् दुःख को प्राप्त होता ॥

२१. *शब्दार्थ*—[सूरयः] धर्मात्मा विद्वान लोग [दिवि] आकाश में सूर्य के प्रकाश [चक्षुः] नेत्र की व्याप्ति [इव] के समान [आततम्] (सब ओर से) विस्तृत (परिपूरित) [विष्णोः] सर्वव्यापक परमेश्वर के [तत्] उस [परमम्] परम [पदम्] पद को (अर्थात् मोक्ष को) [सदा] सर्वदा [पश्यति] अपने आत्मा में यथावत् देखते हैं ॥

परब्रह्म सब जगह से परिपूर्ण एकरस भर रहा। वही परमपदस्वरूप परमात्मा परमपद है इसी की प्राप्ति होने से जीव सब दुःखों से छूटता है अन्यथा जीव को कभी परमसुख नहीं मिलता। इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये ॥ २१ ॥

प्रार्थना विषय

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे
वीलू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी
मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २२ ॥

ऋ० १ । ३ । १८ । २ ॥

व्याख्यान—(परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि, हे जीवो ! "वः" (युष्माकम) तुम्हारे लिये आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक), धनुष, बाण, करवाल (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीलू" दृढ़ हों। किस प्रयोजन के लिये ? "पराणुदे" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये, जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग

---

२२. *शब्दार्थ*—हे जीवो ! [वः] तुम्हारे [आयुधा] आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बन्दूक) आग्नेयास्त्र (बम, राकेट इत्यादि) हथियार [पराणुदे] शत्रुओं के पराजय के लिए [उत] और [प्रतिष्कभे] शत्रुओं के वेग को रोकने के लिए [स्थिरा] स्थिर [वीलू] अत्यन्त दृढ़ [सन्तु] हों तथा [युष्माकम] तुम्हारी [तविषि] बलरूप उत्तम सेना [पनीयसी] अत्यन्त प्रशंसित [अस्तु] होवे [मा] न कि [मायिनः] छली, कपटी, अन्यायकारी [मर्त्यस्य] मनुष्य की ॥

कभी दु:ख न दे सकें "उत, प्रतिष्कभे" शत्रुओं के वेग को थामने के लिये "युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो जिससे तुमसे लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो परन्तु "मा मर्त्यस्य मायिन:" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते। दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्ति-रहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो उसका पराजम हो सदा हो। हे बन्धुवर्गों ! आओ अपने सब मिलके सर्व दु:खों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥ २२ ॥

स्तुति विषय

विष्णोः कर्माणि पश्यत
यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ २३ ॥

ऋ० १। २। ७। १६॥

व्याख्यान—हे जीवो ! "विष्णो:" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो। (प्रश्न) किस हेत से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म्म हैं !

---

२३. *शब्दार्थ*—हे जीवो ! [विष्णो:] सर्वव्यापक ईश्वर के [कर्माणि] जगत् की उत्पत्ति स्थिति आदि दिव्य कर्मों को [पश्यत्] तुम देखो (सम्यक जानो), [यत:] जिसके सामर्थ्य से (मनुष्य) [व्रतानि] ब्रह्मचार्य सत्य भाषणादि व्रतों का [पस्पशे] पालन करने के लिए समर्थ होते हैं। वह परमात्मा ही [इन्द्रस्य] जीव का [युज्य:] योग्य [सखा] मित्र (है) ॥

(उत्तर) "यतो व्रतानि पस्पशे" जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत, और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी हो के समर्थ हुए हैं। यह काम उसी के सामर्थ्य से हैं। क्योंकि "इन्द्रस्य, युज्यः, सखा" इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इसका वही एक योग्य मित्र है अन्य कोई नहीं क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये ॥ २३ ॥

प्रार्थना विषय

पराणुदस्व मघवन्नमित्रा-
न्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने
भवा वृधः सखीनाम् ॥ २४ ॥

ऋ० ५ । ३ । २१ । २५ ॥

व्याख्यान—हे मघवन् परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! "अमित्रान्" हमारे सब शत्रुओं को "पराणुदस्व" परास्त कर दे।

---

२४. *शब्दार्थ*—हे [मघवन्] परमैश्वर्यवान् परमात्मन् ! [अस्माकम्] हमारे [अमित्रान्] शत्रुओं को [पराणुदस्व] परास्त कर दो। हे दातः [नः] हमारे [वसु] पृथिवी के [सुवेदाः] धर्मोपार्जित सब धन [नः] हमारे लिए [कृधि] सुलभ करो। [महाधने] युद्ध में [अस्माकम्] (आप ही) हमारे [सखीनाम्] मित्रों तथा सेनादि के [अविता] रक्षक तथा [वृधः] बलवर्धक [भव] होवो। तथा [बोधि] (हमको आप अपने ही) जानो ॥

हे दातः ! "सुवेदाः, नो, वसू, कृधि" । "अस्माकं, बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ कर । "महाधने" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक "वृधः" वर्द्धक "भव" आप ही हो तथा "बोधि" हमको अपने ही जानो । हे भगवन् ! जब आप हमारे रक्षक योद्धा होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा इसमें सन्देह नहीं ॥ २४ ॥

प्रार्थना विषय

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु
शं नः पुरन्धिः शमुसन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः
शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २५ ॥

ऋ० ५ । ३ । २८ । २ ॥

व्याख्यान—हे ईश्वर ! 'भगः" आप और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य "शं नः" हमारे लिये सुखकारक हो, और "शमु, नः, शंसो

२५. *शब्दार्थ*—[भगः] ईश्वर का दिया हुआ ऐश्वर्य [नः] हमारे लिए [शम्] सुख कारक (हो) [नः] हमारी [शंसः] प्रशंसा [उ] निश्चय से सदा [शम्] सुखकारक [अस्तु] हो, [पुरन्धि] संसार के धारण करने वाला ईश्वर तथा वायु व प्राण (वा) [रायः] सब धन [उ] निश्चय से [नः] हमारे लिए [शम्] आनन्ददायक [सन्तु] हों । [सत्यस्य] सत्य यथार्थ धर्मयुक्त (वा) [सुयमस्य] सुसंयम वा जितेन्द्रियादि लक्षण युक्त की [शंसः] प्रशंसा अर्थात् प्रसिद्ध पुण्यस्तुति [नः] हमारे लिए [शम्] परमानन्द वा शान्तियुक्त हो [पुरुजातः] अनन्त सामर्थ्य युक्त (ईश्वर) [नः] हमारे लिए [शम्] कल्याणकारक [अस्तु] होवे ॥

अस्तु" आपकी कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो। "पुरन्धिः, शमु, सन्तु रायः" संसार के धारण करने वाले आप तथा वायु, प्राण और सब धन आनन्ददायक हों। "शन्नः, सत्यस्य सुयमस्य शंसः" सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रियतादिलक्षण-युक्त जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो। "शं नो, अर्यमा" न्यायकारी आप "पुरुजातः" अनन्त सामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ ॥ २५ ॥

स्तुति विषय

त्वमग्ने प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य ।
अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २६ ॥

ऋ० ५ । ८ । ३५ । २ ॥

व्याख्यान—हे "अग्ने" सर्वज्ञ ! तू ही सर्वत्र "प्रशस्यः" स्तुति करने के योग्य है, अन्य कोई नहीं। "विदथेषु" यज्ञ और युद्धों में आपही स्तोतव्य हो। जो तुम्हारी स्तुति को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है। "सहन्त्य" शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो। "रथीः" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो। हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले हो इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता ॥ २६ ॥

---

२६. शब्दार्थ—[अग्ने] हे सर्वज्ञ ईश्वर ! [त्वम्] आप (ही सर्वत्र) [प्रशस्यः] यज्ञों वा युद्धों में स्तुति करने योग्य [असि] हो। तथा [विदथेषु] धर्मयुद्धों में (आप ही) [सहन्त्य] शत्रुओं के समूहों का नाश करने वाले (हो)। तथा आप ही [अध्वराणाम्] यज्ञों अथवा युद्धों में (हमारे) [रथीः] रथी अर्थात् नायक हो ॥

प्रार्थना विषय

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्नि-
राप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । २७ ।।।

ऋ० ५ । ३ । २७ । २५ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! "तन्न इन्द्रः" सूर्य, "वरुणः" चन्द्रमा, "मित्रः" वायु, "अग्निः" अग्नि, "आपः" जल, "ओषधीः" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आपकी आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा सेवन करें। हे रक्षक ! "मरुतामुपस्थे" प्राणादि पवनों के गोद में बैठे हुए हम आपकी कृपा से "शर्मन्त्स्याम" सुखयुक्त सदा रहें "स्वस्तिभिः" सब प्रकार के रक्षणों से "यूयं, पात" (आदरार्थं बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो किसी प्रकार से हमारी हानि न हो ॥ २७ ॥

---

२७. *शब्दार्थ*—हे भगवन् ! [इन्द्रः] सूर्य, [वरुणः] चन्द्रमा [मित्रः] वायु, [अग्निः] अग्नि, [आपः] जल, [ओषधिः] ओषधियां तथा [वनिनः] वनस्थ वृक्षादि [तत्] ये सब (आपकी आज्ञा से) सुख-स्वरूप (होकर) [जुषन्त] (हमारा) सेवन करें। (हे रक्षक) [मरुताम्] प्राणादि पवनों के [उपस्थे] सुसमीप बैठे हुए (हम सर्वदा) [शर्मन] सुखयुक्त [स्याम] रहें। [यूयम्] आप [नः] हमारी [स्वस्तिभिः] सब प्रकार के रक्षणों से [सदा] सर्वदा [पात] रक्षा करो ॥

स्तुति विषय

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ।। २८ ।।

ऋ० ५ । ८ । १७ । ४१ ।।

व्याख्यान—हे ईश्वर ! "ऋषिः" सर्वज्ञ "पूर्वजाः" और सबके पूर्वजों के एक अद्वितीय "ईशानः" ईशनकर्त्ता अर्थात् ईश्वरता करने हारे ईश्वर तथा सबसे बड़ प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहने वाले "ओजसा" अनन्तपराक्रम से युक्त हो। हे इन्द्र महाराजधिराज ! "चोष्कूयसे वसु" सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपनें सेवकों पर कर रहे हो। आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो ।। २८ ।।

प्रार्थना विषय

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽ-
नेहसो व ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः ।। २९ ।।

ऋ० ६ । ४ । ६ । १२ ।।

व्याख्यान—हे भगवन् ! "रक्षस्विनें भद्रं, नेंह" पापी हिंसक

२८. *शब्दार्थ*—हे ईश्वर ! आप [हि] ही निश्चय से [ऋषिः] सर्वज्ञ, [पूर्वजाः] सब पूर्वजों के पूर्वज [एकः] अद्वितीय [ईशानः] ईशान-कर्त्ता अर्थात् सब चराचर जगत् के रचनें वाले, [ओजसा] अनन्त पराक्रम युक्त [असि] हो। [इन्द्र] हे महाराजाधिराज ! [वसु] हे सब धन के दाता ! [चोष्कूयसे] (आप) अपने अत्यन्त आर्द्रस्वभाव से अपनी कृपा का प्रवाह (अपने सेवकों पर सदा) कर रहे हो ।।

२९. *शब्दार्थ*—हे भगवन् ! [इह] इस संसार में (कभी)

दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना। "नावर्यै" धर्म से विपरीत चलने वाले को सुख कभी मत हो। तथा "नोपया उत" अधर्मी के समीप रहने वाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो। ऐसी प्रार्थना आपसे हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिए नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिए। तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियाँ, दुग्ध देनें वाली गौ आदि, वीरपुत्र और शूरवीर भृत्य "श्रवस्यते" विद्या, विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्यजन तथा इनके लिए "अनेहसः" निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दढ़ सुख हो। "ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः" (वः युष्माकं, बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर! आप सब रक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं की रक्षा करने हारे हैं। जिन पर आप रक्षक हो उनको सदैव भद्र कल्याण (परमसुख) प्राप्त होता है अन्य को नहीं ॥ २६ ॥

[न] न [रक्षस्विने] राक्षस अर्थात् पापी हिंसक दुष्टात्मा को और [न] न ही [आवर्यै] धर्म से विपरीत चलने वाले को (सुख हो) [उत] तथा [न] न ही [उपया] अधर्मी के समीप रहने वाले वा उसके सहायक को (सुख हो) किन्तु हमारी [गवे] शमदमादि युक्त इन्द्रियाँ [च] और [धेनवे] दुग्ध देने वाली गौ आदि [च] और [वीराय] वीर पुत्र वा सैनिकों को [भद्रम्] (सदा) सुख हो [च] और [श्रवस्यते] (हमारे) विद्या विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त जनों के लिए [अनहेसः] क्रोधरहित अर्थात् निष्पाप निरुपद्रव दढ़ सुख (सदा हो)। हे सर्वरक्षकेश्वर! [वः] आपके [ऊतयः] रक्षण [सुऊतयः] अच्छे रक्षण हैं अर्थात् जिन (धर्मात्मा शूरवीरों) के आप रक्षक हो उनको भद्र अर्थात् परमसुख प्राप्त होता है ॥

स्तुति विषय

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः ।
स्याम ते सुमतावपि ॥ ३० ॥

ऋ० ६ । ३ । ४० । २४ ॥

व्याख्यान—हे परमात्मन् ! आप वसु अर्थात् सबको अपने में बसाने वाले और सब में आप बसने वाले हो। तथा "वसुपतिः" पृथिव्यादि वास हेतुभूतों के पति हो, "कमसि" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशरूप ! आप ही सबके सुखकारक और सुखस्वरूप हो। तथा "विभावसुः" सत्यस्वप्रकाशैकघनमय हो। हे भगवन् ! ऐसे जो आप, उन "ते" आपकी "सुमतौ" अत्यन्तोत्कृष्ट ज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ॥ ३० ॥

---

३०. *शब्दार्थ*— [अग्ने] हे विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ! आप [हि] ही निश्चय से [वसुः] सब को अपने में बसाने वाले और सब में आप वसने वाले हो तथा [वसुपतिः] पृथिव्यादि वास स्थानों के पति तथा [कम्] सुखस्वरूप वा सब के सुखकारक तथा [विभावसुः] स्वप्रकाशकक घनमय [असि] हो। [ते] आप की [सुमतौ] अत्यन्त उत्कृष्ट ज्ञान और परस्पर प्रीति में (हम) [अपि] भी [स्याम] स्थिर हों॥

प्रार्थना विषय

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम
राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे
वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ ३१ ॥

ऋ० १ । ७ । ६ । १ ॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा सब भुवनों का स्वामी "कम्" सब का सुखदाता और "अभिश्रीः" सबका निधि (शोभाकारक) है । "वैश्वानरो, यतते, सूर्येण" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं । "इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे" इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है अर्थात् उसने रचा है "वैश्वानरस्य, सुमतौ, स्याम" उस वैश्वानर परमेश्वर की "सुमतौ" अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट) ज्ञान में

---

३१. *शब्दार्थ*—हे मनुष्यो ! जो [वैश्वानरः] संसारस्थ सब नरों का नायक (नेता) [भुवनानाम्] सब लोकों का अर्थात् सब जगत् का (तथा हम सबका) [राजा] स्वामी वा [कम्] सबका सुखदाता है, [अभिश्रीः] सबका निधि शोभाकारक हैं वा [हि] निश्चय ही [सूर्येण] सूर्य के साथ [यतते] यत्न करता अर्थात् प्रकाशकों का प्रकाशक वा उनका रचने वा चलाने वाला (हि) वही (है) [इतः] उसी (ईश्वर) के सामर्थ्य से [इदम्] यह [विश्वम्] संसार [जातः] उत्पन्न हुआ है । (और वह इस को हमें) [विचष्टे] विविध प्रकार से दिखलाता है । (उस) [वैश्वानरस्य] वैश्वानर परमात्मा के [सुमतौ] उत्कृष्ट ज्ञान में [स्याम्] हम (निश्चित सुखस्वरूप व विज्ञान वाले) हों ॥

हम निश्चित सुखस्वरूप और विज्ञान वाले हों। हे महाराजाधिराजेश्वर ! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ॥ ३१ ॥

स्तुति विषय

न यस्य देवा देवता न मर्त्ता
आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३२ ॥

ऋ० १ । ७ । १० । १५ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल ! "न यस्य" जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का "देवाः" इन्द्रिय "देवताः" विद्वान् सूर्यादि बुद्ध्यादि "न, मर्त्ता" साधारण मनुष्य "आपश्चन" आप, प्राण, वायु समुद्र इत्यादि सब अन्त (पार) कभी नहीं पा सकते किन्तु "प्ररिक्वा" प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके अतिरिक्त (इनसे विलक्षण) भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है। सो "मरुत्वान्" अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा "त्वक्षसा" शत्रुओं के बल का छेदक बल

३२. *शब्दार्थ*—[यस्य] जिस परमात्मा का वा जिस [शवसः] बल का [अन्तम्] पार [न] न [देवताः] सूर्यादि (३३ देवता) वा [देवाः] इन्द्रियें अथवा विद्वान् और [न] न (ही) [आपः] प्राणवायु, अन्तरिक्ष अथवा समुद्र [आपुः] पाते हैं [सः] वह [मरुत्वान्] अत्यन्त बलवान् [इन्द्रः] परमैश्वर्यवान् परमात्मा [प्ररिक्वा] प्रकृष्टता से (इनमें व्यापक होकर भी) इन से विलक्षण अर्थात् भिन्न परिपूर्ण होता हुआ [त्वक्षसा] अपने बल सामर्थ्य से [क्ष्मः] पृथिवी को तथा [दिवः] स्वर्ग अथवा सूर्यादि प्रकाशक लोकों को (धारण कर रहा है)। (वह परमात्मा) [नः] हमारी [ऊती] रक्षा के लिए [भवतु] तत्पर हो ॥

से "क्ष्मः" पृथिवी को "दिवश्च" स्वर्ग को धारण करता है, सो "इन्द्रः" परमात्मा "ऊती" हमारी रक्षा के लिये "भवतु" तत्पर हो ॥ ३२ ॥

प्रार्थना विषय

जातवेदसे सुनवाम सोम-
मरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा
नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ३३ ॥

ऋ० १ । ७ । ७ । १ ॥

व्याख्यान—हे "जातवेदः" परब्रह्मन् ! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जानने वाले हो सर्वत्र प्राप्त हो। जो विद्वानों से ज्ञात सबमें विद्यमान (जात अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो इससे आपका नाम जातवेद है,) उन आपके लिये "वयं, सोमं, सुनवाम" जितने सोम प्रिय गुण विशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब अर्पित हैं। सो आप हे

---

३३. शब्दार्थ—हम [जातवेदसे] उत्पन्नमात्र सब जगत् के जानने वाले अर्थात् अनन्त ज्ञानवान् (ईश्वर) के लिए [सोमम्] सकल ऐश्वर्ययुक्त प्रिय गुण विशिष्ट सांसारिक पदार्थ [सुनवाम्] अर्पित करते हैं और (जो) [अरातीयतः] धर्मात्माओं के दुष्ट शत्रुओं के [वेदः] धनैश्वर्य का [नि] नित्य निश्चय से [दहाति] दहन अर्थात् नाश कर देता है [सः] वह [अग्निः] विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर [नावेव] जैसे (नाविक मल्लाह) नौका से [सिन्धुम्] समुद्र से (पार पहुँचाता है) एसे वह [नः] हमें (हम उपासकों को) [विश्वा] सम्पूर्ण [अति दुर्गाणि] अत्यन्त दुर्गम् स्थान अथवा दुस्सह दुःखों से वा [अति दुरितानि] पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से [पर्षत्] पार अर्थात् पृथक कर देता है ॥

कृपालो ! "अरातीयतः" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "वेदः" धनैश्वर्यादि का "नि दहाति" नित्य दहन करो, जिससे वह दुष्टता को छोड़ के श्रेष्टता को स्वीकार करे तथा "नः" हम का 'दुर्गाणि, विश्वा" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "पर्षदति" पार करके आप नित्य सुखको प्राप्त करो। "नावेव, सिन्धुम्" जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र से पार होने के लिये नौका होती है, "दुरितात्यग्निः" वैसे ही हमको सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके ससार में और मुक्ति में भी परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो ॥ ३३ ॥

स्तुति विषय

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो
मरुत्वान्नोभवत्विन्द्र ऊती ॥ ३४ ॥

ऋ० १ । ७ । १० । १२ ॥

व्याख्यान—हे दुष्टनाशक परमात्मन् ! आप "वज्रभृत"

---

३४. *शब्दार्थ*—[सः] वह (परमात्मा) [वज्रभृत्] वज्र को धारण करने वाला अर्थात् अच्छेद्य, दुष्ट विनाशक वा न्याय को धारण करने वाला [भीमः] अन्याय कारियों को भयंकर भय देने वाला [उग्रः] पापियों को अति कठिन दण्ड देने वाला [सहस्रचेतः] सहस्रों (असंख्य) विज्ञानादि गुण वाला [शतनीथः] सैंकड़ों (असंख्य) पदार्थों की प्राप्ति कराने वाला [ऋभ्वा] महान् प्रकाश वा बल वाला [चम्रीषः] किसी भी सेना के वश में [न] न होने वाला अर्थात् अजेय [शवसा] स्व बल से [पाञ्चजन्यः] पाँच प्राणों का जनक [मरुत्वान्] सब प्रकार के वायुओं का आधार वा चालक वा [इन्द्रः] परमैश्वर्यवान् [ऊती] (हमारी) रक्षा के लिए [भवतु] प्रवृत्त हो ॥

अच्छेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक दुष्ट-विनाशक जो न्याय उसको धारण कर रहे हो "प्राणो वै वज्रः" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है। अतएव "दस्युहा" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो। "भीमः" आपकी न्याय आज्ञा को छोड़ने वालों पर भयंकर भय देने वाले हो। "सहस्रचेताः" सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले आप ही हो। "शतनीथः" सैंकड़ों असंख्यात पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हो। "ऋभ्वा" अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाश वाले हो और सब के प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबल वाले हो। "न, चम्रीषः" किसी चमू (सेना) में वश को प्राप्त नहीं होते हो। "शवसा, पाञ्चजन्य." स्वबल से आप पाञ्चजन्य (पाँच प्राणों के) जनक हो। "मरुत्वान्" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो। सो आप "इन्द्रः" इन्द्र हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों जिससे हमारा कोई काम न बिगड़े ॥ ३४ ॥

प्रार्थना विषय

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ३५ ॥

ऋ० १ । १ । ३१ । ६ ॥

व्याख्यान—हे "शतक्रतो" अनन्तक्रियेश्वर! आप असंख्यात

३५. *शब्दार्थ*—[शतक्रतो] हे सैंकड़ों अर्थात् असंख्य कार्यों को सिद्ध करने वाले अनन्त क्रियेश्वर [त्वा] आपकी [स्वाध्यः] अच्छे प्रकार (आपका) ध्यान करने वाले (हम लोग) [स्तवाम्] नित्य स्तुति करें, [सः] सो आप जगदीश्वर [गोभिः] उत्तम गौओं तथा [अश्वैः] श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं वा चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य से [नः] हमारी [इमम्] इस सत्य भाव से प्रेरित [कामम्] कामना को [आपृण] परिपूर्ण करो ॥

विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो, तथा अनन्तक्रियायुक्त हो। सो आप "गोभिरश्वैः" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विज्ञानादियुक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य्यं से "सेमं, नः, काममापृण' हमारे काम को परिपूर्ण करो। फिर हम भी "स्तवाम, त्वा, स्वाध्यः" सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम प्रकार से आपका स्तवन (स्तुति) करें। हम को दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता। आपको छोड़के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं ॥ ३५ ॥

स्तुति विषय

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः ।
सुमृडीको न आ विश ॥ ३६ ॥

ऋ० १ । ६ । २१ । ११ ॥

व्याख्यान—हे "सोम" ! सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! आपको "वचोविदः" शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से "वर्द्धयामः" सर्वोपरि विराजमान मानते हैं। "सुमृडीकः, नः, आविश" क्योंकि हम को सुन्दर सुख देने वाले आप ही हो, सो कृपा करके हमको आप आवेश करो, जिससे हम लोग अविद्यान्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त हो के आनन्दित हों ॥ ३६ ॥

---

३६. *शब्दार्थ*— [सोम] हे सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! [वचोविदः] शास्त्रवित् (वेदादि शास्त्रों को जानने वाले) [वयम्] हम लोग [गीर्भिः] विद्या सुसंस्कृत वाणियों अर्थात् सामूहिक स्तुति से [त्वा] आप को [वर्द्धयामः] सर्वोपरि विराजमान मानते हैं अर्थात् आपकी बढ़ाई यशगान करते हैं। [सुमृडीकः] सुन्दर सुख देने वाले (आप) [नः] हम को [आविश] (हमारे हृदय में) प्रविष्ट करो ।

प्रार्थना विषय

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ ३७ ॥

ऋ० १ । ६ । २१ । १३ ॥

व्याख्यान—हे "सोम" सौम्य सौख्यप्रदेश्वर! आप कृपा करके "रारन्धि, नः, हृदि" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। (दृष्टान्त) जैसे सूर्य्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय, पशु अपने-अपने विषय और घासादि में रमण करते हैं, *वा जैसे "मर्यः, इव, स्व, ओक्ये:" मनुष्य अपने घर में रमण करता है, वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो॥ ३७ ॥

स्तुति विषय

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः ।
सुमित्रः सोम नो भव ॥ ३८ ॥

ऋ० १ । ६ । २१ । १२ ॥

व्याख्यान—हे परमात्मभक्त जीवो! अपना इष्ट जो परमेश्वर,

---

*दृष्टान्त का एक देश रमणमात्र लेना।

---

३७. *शब्दार्थ*—[सोम] हे सौम्य सौख्यप्रदेश्वर (सुख के देने वाले ईश्वर) आप! [नः] हमारे [हृदि] हृदय में [न] [रारारन्धि] यथावत् रमण करो जैसे कि [गावः] गौवें [यवसेषु] घासादि भक्षणीय पदार्थों में (रमण करती हैं) अथवा [इव] जैसे [मर्यः] मनुष्य [स्व] अपने (ओक्ये) घर में रमण करता है॥

३८. *शब्दार्थ*—[सोम] हे सर्वजगदुत्पादक ईश्वर! (आप) [नः]

सो "गयस्फानः" प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य का बढ़ाने वाला है, तथा "अमीवहा" शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों का हनन विनाश करने वाला है, "वसुवित्" सब पृथिव्यादि वसुओं का जानने वाला है अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है, "पुष्टि-वर्द्धनः" हमारे शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि का बढ़ाने वाला है। "सुमित्रः, सोम, नः, भव" सुन्दर यथावत् सब का परममित्र वही है। सो हम उससे यह माँगें कि हे सोम सर्वजग-दुत्पादक ! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आपसे भी रक्खें ॥ ३८ ॥

प्रार्थना विषय

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि
अप नः शोशुचदघम् ॥ ३९ ॥

ऋ० १ । ७ । ५ । ६ ॥

व्याख्यान—हे अग्ने परमात्मन् ! "त्वं, हि" तू ही "विश्वतः

हमारे [गयस्फानः] प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य के बढ़ाने वाले, [अमीवहा] शरीर, इन्द्रियजन्य और मानस रोगों के हनन करने वाले, [वसुवित्] सब पृथिव्यादि वसुओं के जानने वाले अर्थात् सर्वज्ञ, [पुष्टिवर्धनः] शरीर, इन्द्रिय, मन व आत्मा की पुष्टि के बढ़ाने वाले वा [सुमित्रः] सुन्दर यथावत् सबके परम मित्र [भव] होओ ॥

३९. *शब्दार्थ*—[विश्वतोमुख] हे सर्वतोमुख अर्थात् सर्वव्यापक होने से सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से नित्य ही सत्योपदेश करने वाले जगदीश्वर । [त्वम्] आप [हि] ही [विश्वतः] सब जगत् में सर्वत्र [परिभूः] सर्वोपरि विराजमान वा सब ओर से व्याप्त [असि] हो । हे प्रभो ! [नः] हमारे [अघम्] पाप को [अप शोशुचत्] दूर करो अर्थात् नष्ट करो ॥

परिभूरसि" सब जगत् में सब ठिकानों में व्याप्त हो अतएव आप विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्ने ! आप स्वशक्ति से सब जावों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो। वही आपका मुख है। हे कृपालो ! "अप, नः शोशुचदघम्" आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाय, जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें ॥ ३९ ॥

स्तुति विषय

तमीडत प्रथमं यज्ञसाधं
विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं
देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४० ॥

ऋ० १।७।३।३॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमीडत" उस अग्नि की स्तुति करो,

४०. *शब्दार्थ*—हे [आरीः] उस परमात्मा को प्राप्त होने योग्य [विशः] मनुष्यो ! [प्रथमम्] सब जगत् से पहले वर्तमान और उसके स्रष्टा वा मुख्यकारण, [यज्ञसाधम्] सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ के साधक (सिद्ध करने वाले सर्वजनक), [आहुतम्] विद्वानों द्वारा सत्कृत जिसका हम आह्वान करते हैं, [ऋञ्जसानम्] विज्ञानादि द्वारा विद्वान लोग जिनको सिद्ध करते हैं उस [ऊर्जः] पृथिव्यादि जगत् रूप अन्न के (पुत्रम्) पुत्र अर्थात् पालन करने वाले, [भरतम्] (उसी अन्न का) पोषण वा धारण करने वाले, [सृप्रदानुम्] सब जगत् को चलने की शक्ति अथवा ज्ञान के दाता [अग्निम्] ज्ञानस्वरूप वा प्रकाशस्वरूप, [द्रविणोदाम्] (सब जगत् को) निर्वाह के लिए अन्न जल आदि वा विद्यादि पदार्थों के देने वाले वा [देवाः] विद्वान लोग [धारयन्] जिसका (अपने मन में) धारण करते हैं [तम्] उस 'अग्नि' नाम परमात्मा की [ईडत] स्तुति करो ॥

कि जो "प्रथमम्" सब कार्यों से पहिले वर्त्तमान और सब का मुख्य कारण है, तथा "यज्ञसाधम्" सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला) सब का जनक है। हे "विशः" मनुष्यो ! उसी को स्वामी मानकर "आरीः" प्राप्त होओ, जिसको हम दीनता से कहते हैं, विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते हैं और जानते हैं। "ऊर्जः, पुत्रं भरतम्" पृथिव्यादि जगत् रूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करने वाला तथा भरत अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करनें वाला है। "सृप्रदानुम्" सब जगत् को चलनें की शक्ति देने वाला और ज्ञान का दाता हैं। उसी को "देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं। वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देने वाला है। उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति याचना कभी किसी को न करनी चाहिये ॥ ४० ॥

प्रार्थना विषय

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ
तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४१ ॥

ऋ० १।७।६।७॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! "तमूतय०" उसी इन्द्र परमात्मा को

४१. शब्दार्थ—[क्षितयः] हे मनुष्यो ! [तम्] उस परमात्मा (की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को) [ऊतयः] अनन्त रक्षण (तथा बलादि) गुण (प्राप्त होंगे) का [शूरसातौ] युद्ध में (वह) [रणयन्]

प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को "ऊतयः" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे। "शूरसातौ" युद्ध में अपने को यथावत् "रणयन्" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा "तं क्षेमस्य, क्षितयः" हे शूरवीर मनुष्यो! उसी को क्षेम कुशलता का, "त्राम्" रक्षक "कृन्वत" करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो। क्योंकि "सः, विश्वस्य" सो करुणामय, सब जगत् पर करुणा करने वाला "एकः" एक ही है अन्य कोई नहीं, सो परमात्मा "मरुत्वान्" प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त "ऊती" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो, जिसकी रक्षा से हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों ॥ ४१ ॥

स्तुति विषय

स पूर्वया निविदा कव्तायो-
रिमाः प्रजाः अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा
अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४२ ॥

ऋ० १।७।३।२॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! सो ही "पूर्वया, निविदा" आदि

रमण वा शूरवीरों के गुण प्राप्त करायगा। [तम्] उसी (परमात्मा को [क्षेमस्य] कुशलता का [त्राम्] रक्षक [कृण्वत] करो (जानो)। क्योंकि [सः] वह [विश्वस्य] सब जगत् के [करुणस्य] कृपामय कर्मों के करने में [एकः] एक मात्र [ईशे] समर्थ है। [मरुत्वान्] समस्त मरुतों (वायुओं) से युक्त [इन्द्रः] परमैश्वर्यवान् परमात्मा [नः] हम लोगों का [ऊतीः] सम्यक् रक्षक [भवतु] होवे ॥

४२. शब्दार्थ—हे मनुष्यो! [सः] वह (परमात्मा) [पूर्वया]

सनातन सत्यातात्रादि गुणयुक्त परमात्मा था, अन्य कोई कार्य नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक लोकान्तर रचे हैं, जो ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर है उसी "प्रविणोदाम्" विज्ञानादि धन देने वाले को "देवः" विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को भजें ॥ ४२ ॥

प्रार्थना विषय

वयं जयेम त्वया युजा वृत-
मस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि
प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४३ ॥

ऋ० १ । ७ । १४ । ४ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमात्मन् ! "त्वया युजा, वयं, जयेम"

आदि सनातन [निविदा] वेदवाणीरूपी [कव्यता] कविता द्वारा [आयोः] सनातन अनादि कारण से (अर्थात् अनादि सर्वज्ञतादि सामर्थ्य से अनादि प्रकृति द्वारा) [मनूनाम्] मननशील मनुष्यों को, [इमाः] इन अन्य [प्रजाः] प्रजाओं को [चक्षसा] सब पदार्थों के दर्शक (दिखाने वाले) [विवस्वता] सूर्य से [द्याम्] प्रकाश को अर्थात् द्युलोक सूर्य, चन्द्रमा, तारागण इत्यादि लोकों को, [अपः] जल अथवा अन्तरिक्ष को [च] और पृथिवी वा औषधि आदि पदार्थों को [अजनयत्] उत्पन्न किया। [देवाः] विद्वान् लोग (उसी) [द्रविणोदाम्] विज्ञान आदि धन के देने वाले [अग्निम्] स्वप्रकाशस्वरूप "अग्नि" नाम परमात्मा को [धारयन्] धारण करते हैं ॥

४३. शब्दार्थ—[इन्द्र] हे परमैश्वर्यवान् परमात्मन् ! [मघवन्] हे

आपके साथ वर्त्तमान आपकी सहायता से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें। कैसा शत्रु ? कि "आवृतम्" हमारे बल से घेरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर ! "भरे-भरे अस्माकमंशमुदवा" युद्ध-युद्ध में हमारे अंश (बल) सेना का "उदव" उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को न प्राप्त हों। जिनको आपकी सहायता है उनका सर्वत्र विजय होता ही है। हे "इन्द्र मघवन्" महाधनेश्वर ! "शत्रुणां, वृष्ण्या" हमारे शत्रुओं के वीर्य्य पराक्रमादि को "प्ररुज" प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे। "अस्मभ्यं, वरिव: सुगं, कृधि" हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को "सुगम्" सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को ही प्राप्त हो ॥ ४३ ॥

महाधनेश्वर ! [त्वया] आपके साथ [युजा] युक्त होते हुए (आपकी सहायता से) [वयम्] हम लोग [आवृतम] (हमारे बल से) घिरे हुए (दुष्ट शत्रुओं को) [जयेम्] जीतें। हे महाराजाधिराजेश्वर ! [अस्माकम्] हमारे [अंशम्] सेना बल की [भरे-भरे] युद्ध-युद्ध में [उदव] उत्तम रीति से रक्षा करो और [शत्रूणाम्] (हमारे) शत्रुओं के [वृष्ण्या] वीर्य पराक्रम आदि को [प्ररुज] प्रकृष्टता से नष्ट कर दो तथा [अस्मभ्यम्] हमारे लिए [वरिव:] चक्रवर्ती राज्य, साम्राज्य धन (की प्राप्ति को) [सुगम्] सुगम (सहल) [कृधि] कर दो ॥

स्तुति विषय

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति-
र्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।। ४४ ।।

ऋ० १।७।१२।५।।

व्याख्यान—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और "प्राणतः" चेतना वाले जगत् का "पतिः" अधिष्ठाता और पालक है, तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है। और "ब्रह्मणे, गाः, अविन्दत्" जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है। और जो "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् परमात्मा डाकुओं को "अधरान्" नीचे गिराता है, तथा उनको मार ही डालता है, "मरुत्वन्तं, सख्याय, हवामहे" आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब सम्प्रीति से मिलके मरुत्वान् अर्थात् परमानन्द बल वाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने

---

४४. *शब्दार्थ*—हे मनुष्यो [यः] जो [विश्वस्य] सारे [जगतः] स्थावर जड़ जगत् का और [प्राणतः] प्राण वाले अर्थात् चेतन जगत् का [पतिः] स्वामी व पालक (है) और [यः] जो [प्रथमः] सब जगत् के आदि में विद्यमान् और जो [ब्रह्मणे] विद्वान् के लिए (ही) [गा] पृथिवी का लाभ और उसका राज्य अर्थात् सारा सुख [अविन्दत्] प्राप्त कराता है वा [यः] जो [इन्द्रः] परमैश्वर्यवान् परमात्मा [दस्यून्] डाकुओं को [अधरान्] नीचे [अवातिरत्] गिराता है—उस [मरुत्वन्तम्] परम अनन्त बलवान् (परमात्मा) को [सख्याय] अपना मित्र होने के लिए [हवामहे] आह्वान करें (स्वीकार करें)।।

के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद होके बुलावें। वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परम मित्रता) करेगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥

प्रार्थना विषय

मृडा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता
तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ ४५ ॥

ऋ० । १ । ८ । ५ । २ ॥

व्याख्यान—हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर! हमको 'मृड" सुखी कर, तथा "मयस्कृधि" हमको मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादक कर। "क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम. ते" शत्रुओं के वीरों का क्षय करनें वाले अत्यन्त नमस्कारादि से आपको परिचर्या करने

४५. *शब्दार्थ*—[रुद्र] हे दुष्टों को रुलाने वाले परमेश्वर! [नः] हमको [मृड] सदा सुखीकर [उत] और [नः] हमको [मयस्कृधि] मय अर्थात् अनन्त सुखी करो। [क्षयद्वीराय] (दुष्ट शत्रु की सेना के) वीरों का विनाश करने वाले [ते] आप की [नमसा] हम नमस्कार आदि से अत्यन्त सत्कारपूर्वक [विधेम्] सेवा अर्थात् परिचर्या करते हैं। आप [मनुः] मननशील अथवा मान्यकारक [पिता] पिता पालक के समान [आयेजे] हमारा अनेक विध सम्यक् लालन करें। तथा हे पिता! [यत्] जो [शम्] सर्व सुख व शान्ति वा गुण प्राप्ति [च] और ज्ञान प्राप्ति (तथा) [योः] दुःख वियोजन (रोगों का नाश) [तत्] वह (अपनी प्रजा के लिए प्रदान करो)। [तव] तेरी [प्रणीतिषु] उत्तम न्याययुक्त नीतियों में (प्रवृत्त होकर) [अश्याम] (वीरों के चक्रवर्ती राज्य को) हम प्राप्त हों॥

वाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर। "यच्छम्" हे रुद्र! आप हमारे पिता (पालक) हो, हमारी सब प्रजा को सुखी कर, "योश्च" प्रजा के रोगों का भी नाश कर। जैसे "मनु" मान्यकारक पिता "आयेजे" स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाडन करता है वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन्! "तव, प्रणीतिषु" आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत होके "तदश्याम" वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ॥ ४५ ॥

स्तुति विषय

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया
उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा
अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ४६ ॥

ऋ० १।५।१९।३॥

व्याख्यान—हे प्रियबन्धु विद्वानो! "देवः न" ईश्वर सब जगत्

---

४६. *शब्दार्थ*—हे विद्वानो [यः] जो [देवः] स्वप्रकाशस्वरूप तथा सर्वप्रकाशक दिव्य सुखदाता ईश्वर [पृथिवीम्] भूमि [न] के समान [विश्वधाया] विश्व को धारण करने वाला है तथा [हितमित्रः] प्रिय मित्रवान् [राजा] राजा (सभाध्यक्ष) [न] के समान [उपक्षेति] सबको जानता व निवास कराता है (वही हम सब का परम मित्र व पालन करता है)। [वीराः] वीर पुत्र [न] जैसे (पिता के घर में आनन्द पूर्वक) निवास करते हैं [पुरःसदः] वैसे ईश्वराभिमुखजन [शर्मसदः] सुख में सदा स्थिर रहते हैं। [अनवद्या] विद्या सौन्दर्यादि अत्यन्त उत्तम गुणयुक्त [पतिजुष्टा] पति की सेवा में सदा तत्पर अर्थात् पतिव्रता [नारी] स्त्री [इव] के समान (हम आप्तो भाइयो) प्रेम प्रीति युक्त होकर ईश्वर की सदा भक्ति करें॥

के बाहर और भीतर सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है। "यः, पृथिवीम्" जो पृथिव्यादि जगत् को रचके धारण कर रहा है और "विश्वधायाः, उपक्षेति" विश्वधारकशक्ति का भी निवास देने और धारण करने वाला है, तथा जो सब जगत् का परम मित्र अर्थात् जैसे "हितमित्रो, न, राजा" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है, वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है, और कोई भी नहीं "पुरःसदः, शर्मसदः न, वीराः" जो जन ईश्वर के पुरःसद हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही शर्मसदः अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं। वा जैसे "न वीराः" पुत्रलोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित होके निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं। जैसे कि "अनवद्या, पतिजुष्टेव, नारी" अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति को सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात दिन, तन, मन, धन और अतिप्रेम से अनुकूल ही रहती है, वैसे प्रेमप्रीति युक्त होके आओ भाई लोगो! ईश्वर की भक्ति करें और अपने सब मिल के परमात्मा से परम सुख लाभ उठावें ॥ ४६ ॥

प्रार्थना विषय

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो
द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति
विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥४७॥

ऋ० ७। ८। १२। २॥

व्याख्यान—हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! "सा मा सत्योक्तिः" आपकी

४७. शब्दार्थ— हे सर्वाभिरक्षकेश्वर! [सा] वह (आप की)

सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया वह "विश्वतः, परि पातु, नः" हमको सब संसार से सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो। "द्यावा, च" और दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे। "यत्र" जिस दिव्य सृष्टि में 'अहानि" सूर्यादिकों को दिवस आदि के होने के निमित्त "ततनन्" आप ने ही विस्तारे हैं, वहाँ भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो। "विश्वमन्यन्" आप से अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) "निविशते" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो। "यदेजति" जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें। "विश्वाहापो विश्वाहा" जो जो विश्व का हन्ता (दुःख देने वाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति,

---

[सत्योक्तिः] सत्याज्ञा (जिसका हमने अनुष्ठान किया है) वा आपकी सत्य वेद वाणी [मा] हमको [विश्वतः] सब संसार से [परिपातु] सर्वथा रक्षित करे वा (दुष्टकर्मों वा दुःखों से) पृथक रक्खे [च] और [द्यावा] दिव्य सुख से युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे। [च] और [यत्र] जिस दिव्य सृष्टि में [अहानि] सूर्यादि को दिवस आदि के निमित्त [ततनन्] (आपने) विस्तारा है (वहाँ भी हमारी सब उपद्रवों से रक्षा करो)। (जिस समय) [अन्यत्] आप से अन्य अर्थात् भिन्न [विश्वम्] सब जगत् [निविशते] प्रलय में प्रवेश करता है वा [यत्] जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से [एजति] चलित होकर उत्पन्न होता है (उस समय भी आप हमारी सब पीड़ाओं से रक्षा करो)। [आपः] हे सर्वव्यापक ईश्वर! [विश्वाहाः] जो २ विश्व का हन्ता (दुःख देने वाला है) उसको आप नष्ट कर दें। हे सर्वत्र प्रकाशमान् ईश्वर! जैसे [सूर्यः] सूर्य [उदेति] उदय होता (वा सबको प्रकाशित करता है) (वैसे आप भी हमारे हृदय में प्रकाशित होओ ॥

स्थिति और प्रलय होता है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है ? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो। (सूर्यवत्) हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ, जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो ॥ ४७ ॥

स्तुति विषय

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो
वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने
सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४८ ॥

ऋ० १। ६। ३२। १३ ॥

व्याख्यान हे मनुष्यो ! वह परमात्मा कैसा है ? कि हम लोग उसकी स्तुति करें। हे अग्ने परमेश्वर ! आप "देवः देवानामसि" देवों (परम विद्वानों) के भी देव (परम विद्वान्) हो, तथा उनको परमानन्द देने वाले हो, तथा "अद्भुतः" अत्यन्त आश्चर्य्यरूप मित्र

४८. *शब्दार्थ*—[अग्ने] हे स्वप्रकाशस्वरूप अनन्त ज्ञानवान परमेश्वर ! (आप) [देवानाम्] परम विद्वानों के (भी) [देवः] परम विद्वान् [असि] हो। (तथा आप) [अद्भुतः] अत्यन्त आश्चर्यरूप [मित्रः] सब के मित्र (हो) तथा आप [वसूनाम्] पृथिव्यादि वसुओं के (भी) [वसुः] वसु अर्थात् वास कराने वाले [असि] हो (तथा आप) [अध्वरे] उपासना वा ज्ञानादि यज्ञ में [चारुः] अत्यन्त शोभायमान वा शोभा देने वाले हो। हे परमात्मन् ! [तव] आपके [सप्रथस्तमे] अतिविस्तीर्ण [शर्मन्] सुख व आनन्द में [स्याम्] हम अच्छे प्रकार स्थित हों वा [तव] आप की [सख्ये] मित्रता में (हम) [रिषाम] उन्मनस्क (बेमन) [मा] कभी न हो (ताकि हमको कभी दुःख प्राप्त न हो) ॥

सर्वं सुखकारक सबके सखा हो, "वसु" पृथिव्यादि वसुओं के भी वास कराने वाले हो, तथा "अध्वरे" ज्ञानादि यज्ञ में "चारु" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देने वाले हो। हे परमात्मन्! "सप्रथस्तमे सख्ये, शर्मणि तव" आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दुःख न प्राप्त हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों ॥ ४८ ॥

प्रार्थना विषय

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा
मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्
मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ४९ ॥

ऋ० १ । ७ । १९ । ८ ॥

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर! 'मा, नो, वधीः"

४९. शब्दार्थ— [मघवन्] हे परमेश्वर्युक्तेश्वर! [शक्र] हे सामर्थ्यवान् (सब व्यवहार के करने में समर्थ)! (आप) [नः] हमारा [मा] न [वधीः] वध करें, [परा] (आप हम से) परे अर्थात् पृथक [मा] कभी न [दाः] हों, [नः] हमारे [प्रियाः] प्रिय [भोजनानि] भोज्य वस्तुओं को [मा] न [प्र मोषीः] चोरवावें वा (छीनें) या मत हरण करे, [नः] हमारे [अण्डाः] गर्भों को [मा] न [निर्भेत्] विदीर्ण करें अर्थात् गिरायें, [नः] हमारे [पात्राः] पात्रों को [मा] न [भेत्] तोड़िये (हमसे पृथक कीजिए) तथा [सहजानुषाणि] (हमारे) स्वभावानुकूल (प्रिय मित्रों) को (नष्ट न करें) ॥ (इस वेद मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह हमारी इन सब उपरोक्त वस्तुओं की रक्षा करे अर्थात् यह सब वस्तुएं हम से कभी पृथक न हों वा वह स्वयम् भी हमसे कभी पृथक न हों ॥

हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावैं। "मा परा दाः" हमसे अलग आप कभी मत हो "मा नः प्रिया०" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावैं। "आण्डा मा०" हमारे गर्भों का विदारण मत कर। हे "मघवन्" सवशक्तिमन् "शक्र" समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। "मा नः, पात्रा" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर। "सहजानुषाणि" जो जो हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट न करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो ॥ ४९ ॥

प्रार्थना विषय

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातर
मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ५० ॥

ऋ० १ । ८ । ६ । ७ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधी-
र्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ५१ ॥

ऋ० १ । ८ । ६ । ८ ॥

व्याख्यान हे "रुद्र" दुष्टविनाशकेश्वर! आप हम पर कृपा

५०. शब्दार्थ— [रुद्र] हे दुष्ट विनाशकेश्वर ! आप कृपया

करो। "मा, नो, व०" हमारे ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो। "मा नो अर्भकम्" छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वोर्यसेचनसमर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो। तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो। "मा, नः, तोके" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान हमारी सेना के शूरों में "हविष्मन्तः" यज्ञ के करने वाले इनमें "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो। हम लोग आपको

[मा] न [नः] हमारे [महान्तम] ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध को [उत] और [मा] न [नः] हमारे [अर्भकम्] छोटे बालक को, [मा] न [नः] हमारे [उक्षन्तम्] वीर्य सेचन में समर्थ (युवक) को [उत] और [मा] न [नः] हमारे [उक्षितम] गर्भ सिंचित वीर्य को, [मा] न [नः] हमारे [पितरम्] पिता [उत] और [मातरम्] माता को [वधी] मारें वा [मा] न [नः] हमारे [प्रियाः] प्रिय [तन्वः] शरीरों अर्थात् मित्र सम्बन्धियों की [रीरिषः] हिंसा करो ॥

५९. शब्दार्थ—[रुद्र] हे दुष्टों को रुलाने वाले परमन्यायाधीश ! आप कृपया [मा] न [नः] हमारे [तोके] सद्योजात (अभी उत्पन्न हुए) बच्चों पर वा [तनये] छोटे बालकों पर [मा] न [नः] हमारी [आयौ] आयु पर [मा] न [नः] हमारी [गोषु] गौओं पर वा [मा] न [नः] हमारे [अश्वेषु] घोड़ा आदि पशुओं पर, [मा] न [नः] हमारे [वीरान्] शूरवीरों पर अथवा [हविष्मन्तः] यज्ञादि उपकार कर्म करने वालों पर [रीरिषः] रोषयुक्त और [भामितः] क्रोधित होकर (इनको कभी) [वधी] मारें। हे भगवन् ! हम लोग [सदम्] सदा [त्वा] आपका [इत] ही [हवामहे] आह्वान करते हैं ॥

"सदमित्त्वा, हवामहे" सर्वदैव आह्वान करते हैं ! हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! आपसे यही प्रार्थना है कि, हमारो और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥ ५० ॥ ५१ ॥

प्रार्थना विषय

उद्गातेव शकुने साम गायसि
ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि
वृशेव वाजी शिशुमतीरपीत्या
सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ ५२ ॥
ऋ० २ । ८ । १२ । २ ॥

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद
तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ५३ ॥
ऋ० २ । ८ । १२ । ३ ॥

व्याख्यान—हे "शकुने" सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप सामगान को गाते ही हो । वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित

---

५२. शब्दार्थ—[शकुने] हे सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! [उद्गाता] यज्ञ में सामगान के पण्डित [इव] की न्याई (आप) [साम] साम का [गायसि] गायन करते हो । [ब्रह्मपुत्र] वेदवेत्ता [इव] की भांति [सवनेषु] पदार्थ

गान करो। जैसे यज्ञ में महापण्डित सामगान करता है वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का प्रकाश कीजिये। "ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु" आप कृपा से सवन (पदार्थ विद्याओं) को 'शंससि" प्रशंसा करते हो वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो। जैसे "ब्रह्मपुत्र इव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशसा करता है वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये। आप "वृषेव वाजो" सर्वशक्ति का सेवन करने और अन्नादि पदार्थों के देने वाले तथा

विद्याओं की [शंससि] प्रशंसा करते हो। [वाजी] हे महाबलवान् वा वेगवान्! [वृषा] वृषभ [इव] की भान्ति (उत्तम पदार्थों व गुणों की वृष्टि करने वाले हो)। [शिशुमती:] (उत्तम सन्तान वाली स्त्रियों) को [अपीत्य] प्राप्त होकर (हम आपको ही भजें। [शकुने] हे सर्व सामर्थ्यवान् ईश्वर! [सर्वत:] सब ओर से [न:] हमारे लिए [भद्रम्] कल्याण को (ही) [आवद] अच्छे प्रकार कहें। [शकुने] हे सुखदाता ईश्वर! [विश्वत:] सब जगत् के लिए [न:] हमें [पुण्यम्] पुण्य कर्म अर्थात् धर्मकर्म करने का (ही) [आवद] उपदेश करो॥

५३. शब्दार्थ—[शकुने] हे सर्वशक्तिमान ईश्वर! [त्वम्] आप [आवदन्] उपदेश करते हुए [भद्रम्] मोक्ष सुख का [आवद] निरन्तर उपदेश (सब जीवों के लिए) करें। [आसीन:] (हमारे हृदय में) स्थित हुए [तूष्णीम्] चुपचाप अर्थात् अन्तर्यामी रूप से [सुमतिम्] सर्वोत्तम ज्ञान को [न:] हमें [चिकिद्धि:] जनाओं अर्थात् प्राप्त कराओ। [उत्पतन्] ऊंचे उठते हुए अर्थात् उत्तम व्यवहार में पहुँचाते हुए (की तरह) [यत्] जो [यथा] जैसे [कर्करि:] कर्त्तव्य कर्म अर्थात् धर्म का [वदसि] आप उपदेश करते हो (ऐसे ही) [विदथेषु] विज्ञानादि यज्ञ वा धर्म युद्धों में [सुवीरा:] अत्यन्त शूरवीर होकर (हम) [बृहत्] सबसे बड़े आप परब्रह्मन् की ही [वदेम] स्तुति प्रार्थना करें॥

महाबलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो। जैसे कि वृषभ के समान आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करने वाले हो वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो। "शिशुमतीः" हम लोग आपकी कृपा से उत्तम शिशु (सन्तानादि) को "अपीत्य" प्राप्त होके आप को ही भजें। "आ सवतो नः शकुने" हे शकुने! सर्व सामर्थ्यवान् ईश्वर! सब ठिकानों से हमारे लिये "भद्रम" कल्याण को "आ वद" अच्छे प्रकार कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें। "विश्वतो, नः श०" हे सब को सुख देने वाले ईश्वर! सब जगत् के लिये "पुण्यम" धर्मात्मा के कर्म करने को "आ वद" उपदेश कर जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करे और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो। "आवदंस्त्वं श०" हे शकुने जगदीश्वर! आप सब "भद्रम्" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्षसुख का निरन्तर उपदेश कीजिये। "तूष्णीमासीनः सु०" हे अन्तर्यामिन्! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौन से ही "सुमतिम्" सर्वोत्तम ज्ञान देओ। "चिकिद्धि नः" कृपा से हम को अपने रहने के लिये घर ही बनाओ और आपकी परम विद्या को हम प्राप्त हों। "यदुत्पतन्वद०" उत्तम व्यवहार में पहुंचाते हुए आपका (यथा) जिस प्रकार से "कर्करिवंदसि" कर्त्तव्य, कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो अकर्त्तव्य दुष्ट कर्म मत करो ऐसा उपदेश है कि पुरुषार्थ अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी कोई मत छोड़ो वैसे "बृहद्वदेम विदथे" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "सुवीराः" अत्यन्त शूरवीर होके बृहत् (सब से बड़े) आप जो परब्रह्म उन "वदेम" आपकी स्तुति, आपका उपदेश, आपकी प्रार्थना और उपासना तथा आपका यह बड़ा

अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहें, सुनें और आपके अनुग्रह से परमानन्द को भोगें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ओ३म् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः

इति

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां
श्रीयुतविरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित
आर्याभिविनये प्रथमः प्रकाशः
पूर्त्तिमागमत् ।

समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥

❀ ओ३म् ❀

तत्सत्परमात्मने नमः

अथ द्वितीयः प्रकाशः

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु ।
सह वीर्य्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।। १ ।।

तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्द वल्ली प्रपा० १०।

प्रथमानुवाकः ।। १ ।।

व्याख्यान—हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों। आपकी कृपा से हम लोग सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें तथा आपको ही पिता, माता, बंधु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद्, परम गुर्वादि जानें।

---

१. **शब्दार्थ**—[ओ३म्] हे सहनशीलेश्वर ! (आपकी कृपा से) [नौ] हम लोग [सह] परस्पर मिल के [अवतु] एक दूसरे की प्रसन्नता मे) रक्षा करें। (और) आप के अनुग्रह से [नौ] हम लोग [सह] परस्पर मिलकर [भुनक्तु] परमानन्द अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य का भोग करें। (तथा

क्षणमात्र भी आपको भूल के न रहें। आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानें। आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों। एक दूसरे का दुःख न देख सकें। स्वदेशस्थादि मनुष्यों का अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान्, पाखण्ड रहित करें। "सह, नौ, भुनक्तु" तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करें। हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगें कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करें उस आनन्द से हम लोगों को क्षण भी अलग न रक्खें। "सह, वीर्य्यं, करवावहै" आपकी सहायता से परमवीर्य जो सत्यविद्या, उसको परस्पर परमपुरुषार्थ से प्राप्त हों। "तेजस्वि नावधीतमस्तु" हे अनन्त विद्यामय भगवन्! आपकी कृपादृष्टि से हम लोगों का पठनपाठन परम विद्यायुक्त हो तथा संसार में सबसे अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्यप्रीति से परमवीर्य पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्ती राज्य भोगें। हममें सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें जिससे कि हम लोग नाना

आप के सहाय से) [नौ] हम लोग [सह] परस्पर पुरुषार्थ से [वीर्यम्] एक दूसरे का सामर्थ्य [करवावहै] सदा बढ़ाते रहें। (तथा आपकी कृपा दृष्टि से) [नौ] हमारा [अवधीतम्] पठन-पाठन अर्थात् पढ़ा-पढ़ाया [तेजस्वी] (सब संसार में) अत्यन्त प्रकाशित [अस्तु] हो। (तथा आपके सहाय से) [मा विद्विषावहै] एक दूसरे से कभी द्वेष न करें। [ओ३म्] हे भगवन्! [शान्तिः - शान्तिः - शान्तिः] तीन प्रकार के सन्ताप अर्थात् १. आध्यात्मिक (शारीरिक जो ज्वर आदि से होता है) २. आधिभौतिक (जो शत्रु सर्पादि दूसरे जीवों से होता है) ३. आधिदैविक (जो मन के सन्ताप अथवा अति वृष्टि, अतिशीत इत्यादि से होता है) इन तापों की हम से शीघ्र निवृत्ति करें॥

पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्यसनातनमतस्थ हों, जिससे समस्त वैरभाव के मूल जो पाखंडमत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों। "मा विद्विषावहै" और हे जगदीश्वर! आपके सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वष अर्थात् अप्रीति न रहे, जिससे हमलोग कभी परस्पर विद्वेष न करें। किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या इनको परस्पर सब के सुखोपकार में परमप्रीति से लगावें। "ओ३म् शांतिः शांतिः शांतिः" हे भगवन्! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होनें से होता है। दूसरा आधिभौतिक जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र चौरादिकों से होता है और तीसरा आधिदैविक जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णतेत्यादि से होता है। हे कृपासागर! आप इन तीनों तापों की शीघ्र निवृत्ति करें जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें। हे विश्वगुरो! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर। हे जगन्मङ्गलमय! सब दुःखों से मुझको छुड़ाके सब सुखों को प्राप्त कर। हे प्रजापते! (सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, परमैश्वर्येण, संयोजय) हे प्रजापते! मुझको अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्व गवादि उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्त्ती राज्यादि परमैश्वर्यं जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य! (सर्वरोगात्पथक्कृत्य नैरोग्यन्देहि) सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ाके परम नैरोग्य दे। हे महाराजाधिराज! [पाप करनें से मुझको रोक दें] * जिससे मैं शुद्ध होके आप को सेवा में स्थिर होऊं। (हे

*कुछ ऐसा पाठ नवीन संस्करणों में छूट गया प्रतीत होता है।

न्यायाधीश ! कुकाम-कुलोभ-कुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषय-तृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर ! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को कृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ कामों में यथावत् मुझको स्थिर कर। मैं अत्यन्त दीन हो के यही मांगता हूं कि मैं आप और आपकी आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं। हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राणजीवन, सुराज्यप्रद ! मेरे प्राणवाले आदि आप ही हो, मेरा सहायक आपके बिना कोई नहीं है। हे महाराजाधिराज ! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आपका राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आपकी ओर से स्थिर हो। आपके राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हमको शीघ्र ही कर। हे न्यायप्रिय हमको भी न्यायप्रिय यथावत् कर। हे धर्माधीश ! हमको धर्म में स्थिर रख। हे करुणामय पितः ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं, वैसे ही आप हमारा पालन करो ॥ १ ॥

स्तुति विषय

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रण-
मस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ-
र्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥

यजुर्वेदे। अध्याये ४० । ८ ॥

व्याख्यान—"स, पर्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है। "शुक्रम्" सब जगत् का करने वाला वही है। "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार)

---

२. शब्दार्थ— [सः] वह परमात्मा [पर्यगात्] सर्वव्यापक,

नहीं धारण करता, क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है। इससे देह धारण कभी नहीं करता। उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है। इसी से ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता। "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस अछेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है इससे अंशांशिभाव भी उसमें नहीं है, क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकाश से नहीं हो सकता। "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता। अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर को कोई आवरण नहीं हो सकता। "शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्या, जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा तृषादि दोषोपाधियों से रहित है। शुद्ध की उपासना करने वाला शुद्ध ही होता है, और मलिन का उपासक मलिन ही होता है। "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता, क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है। "कविः" त्रैकालज्ञ, (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसको विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता। "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सबके मन का दमन करने वाला है। "परिभूः" सब दिशाओं और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा

[शुक्रम्] सर्व जगत् की उत्पत्ति करने वाला, [अकायम्] (स्थूल-सूक्ष्म-कारण) शरीर रहित अर्थात् अवतार धारण नहीं करता, [अव्रणम्] अछेद्य अर्थात् उसमें छिद्र किसी प्रकार नहीं हो सकता, [अस्नाविरम्] नाड़ी आदि के बन्धन से रहित, [शुद्धम्] सदैव निर्मल शुद्ध पवित्र, [अपापविद्धम्] सर्वदा पापाचरण से रहित न्यायकारी, [कविः] त्रैकालज्ञ सर्वज्ञ अनन्त विद्यामय, [मनीषी] सबका साक्षी, [परिभूः] सर्वोपरि विराजमान् व सर्वत्र परिपूर्ण, [स्वयम्भूः] अनादि अर्थात् जिसका माता पिता उत्पादक कोई नहीं किन्तु सबका आदि कारण है—वह [शाश्वतीभ्यः] अपनी सनातन अनादि [समाभ्यः] जीवरूप प्रजा के लिए [याथातथ्यतः] यथावत् [अर्थान्] सब पदार्थों को अथवा वेद विद्या को [व्यदधात्] बनाता है अथवा उपदेश करता है ॥

है, सबके ऊपर विराजमान है। "स्वयम्भूः" जिसका आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं किन्तु वही सबका आदिकारण है। "याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है। उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक वेद विद्यारूप सूर्य प्रकाशित किया हैं। और सब का आदिकारण परमात्मा हैं ऐसा अवश्य मानना चाहिये। ऐसे विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को भी निश्चित मानना चाहिये। विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है। क्योंकि हम लोगों के लिए उसने सब पदार्थों का दान किया है, तो विद्यादान क्यों न करेगा। सर्वोत्कृष्ट-विद्या पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया हैं, तो वेद के बिना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है। जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही वेदपुस्तक भी है। अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत वेदतुल्य वा अधिक नहीं है। अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" मेरे किये ग्रन्थों में देख लेना ॥ २ ॥

प्रार्थना विषय

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ३ ॥

य० ३६ । १८ ॥

व्याख्यान—हे अनन्तबल महावीर ईश्वर! "दृते" हे

३. शब्दार्थ—[दृते] हे दुष्ट स्वभाव नाशक, अविद्यान्धकार

दुष्टस्वभावनाशक विदीर्णकर्म अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाश करने वाला मुझ को मत रखो (मत करो) किन्तु उससे मेरे आत्मादि को विद्या सत्यधर्मादि शुभ गुणों में सदैव अपनी कृपा सामर्थ्य से स्थित करो। "दृंह मा" हे परमैश्वर्यवन् भगवन्! धर्मार्थकाममोक्षादि तथा विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझको बढ़ा। "मित्रस्येत्यादि०" हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्यामिन्! सब भूत प्राणिमात्र मित्रदृष्टि से यथावत् मुझको देखें। सब मेरे मित्र हो जायं। कोई मुझसे किञ्चिन्मात्र भी वैर न करें। "मित्रस्याहं, चेत्यादि" हे परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर होके सब चराचर जगत् को मित्रदृष्टि से अपने प्राणवत् प्रिय जानूं। अर्थात् "मित्रस्य चक्षुषत्यादि" पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारीमात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर अपना वर्त्ताव करें। अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्त्तें। यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिये परमात्मा ने उपदेश किया है। सबको यही मान्य होने के योग्य है ॥ ३ ॥

निवारक जगदीश्वर! [मा] मुझको [दृंह] (धर्मार्थ काम मोक्षादि तथा विज्ञानादि दान से) अत्यन्त बढ़ा। [सर्वाणि] सब [भूतानि] प्राणीमात्र [मित्रस्य] मित्र की [चक्षुषा] दृष्टि से [मा] मुझको [समीक्षन्ताम्] देखें। तथा [अहम्] मैं (भी) [मित्रस्य] मित्र की [चक्षुषा] दृष्टि से [सर्वाणि] सब [भूतानि] प्राणियों को [समीक्षे] देखूं और ऐसे ही [मित्रस्य] मित्र की [चक्षुषा] दृष्टि से [समीक्षामहे] हम सब जीव एक दूसरे को देखें अर्थात् अत्यन्त प्रेम से परस्पर वर्त्ताव करें ॥

स्तुति विषय

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ ४ ॥

य० ३२ । १ ॥

व्याख्यान—जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम अग्नि है। (ब्रह्म ह्यग्निः शतपथे) सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द का अर्थ है। "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वजगत्कर्तृ ब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मेत्यादि" शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं "तदादित्यः" जिसका कभी नाश न हो, और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है। "तद्वायुः" सब जगत् का धारण करने वाला, अनन्त बलवान्, प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है, इससे ईश्वर का नाम वायु है। पूर्वोक्त प्रमाण

---

४. *शब्दार्थ*—[तत्] वह (परमेश्वर) [एव] ही [अग्निः] ज्ञानस्वरूप तथा पूज्यतम् होने से "अग्नि" नाम वाला है। [तत्] वह (परमात्मा ही) [आदित्यः] अविनाशी तथा स्वप्रकाश स्वरूप होने से "आदित्य" कहा जाता है। [तत्] वह (परमात्मा ही) [वायुः] सबका धारण करने वाला, अनन्त बलवान् तथा प्राणों से भी प्रिय होने से "वायु" (कहा जाता है)। [तत्] (वह परमात्मा ही) [चन्द्रमा] स्वयं आनन्द स्वरूप तथा स्वसेवकों को आनन्द देने वाला होने से "चन्द्रमा" (कहा जाता है)। [तत्] वह (परमात्मा ही) [शुक्रम्] सब जगत् का कर्ता होने से "शुक्र" है। [तत्] वह (परमात्मा ही) [ब्रह्म] सबसे बड़ा व स्वभक्तों को विद्यादि से बढ़ाने वाला होने से "ब्रह्म" (कहा जाता है)। [ताः] वह (परमात्मा ही) [आपः] सर्वव्यापक होने से आप (कहा जाता है)। [सः] वह (परमात्मा ही) [प्रजापतिः] सब जगत् का पति अर्थात् स्वामी वा पालन करने वाला होने से "प्रजापति" (नाम से कहलाता है) ॥

से "तद् चन्द्रमाः" जो आनन्दस्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देने वाला है इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना। "तदेव, शुक्रम्" वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है। "तद्ब्रह्म" सो अनन्त चेतन सब से बड़ा है, और धर्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ाने वाला है। "ता आपः" उसी को सर्वज्ञ चेतन सवत्र व्याप्त होने से आप नामक जानना। "सः, प्रजापतिः" सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करने वाला है, अन्य कोई नहीं। उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें अन्य को नहीं॥ ४॥

प्रर्थना विषय

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये
साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये।
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ॥ ५॥

य० ३६। १॥

व्याख्यान—हे करुणाकर परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं

---

५. *शब्दार्थ*—हे करुणाकर परमात्मन्! (आपकी कृपा से मैं। [ऋचं] ऋग्वेदरूप (प्रशंसनीय) [वाचम्] वाणी को [प्रपद्ये] प्राप्त होऊँ, तथा [यजुः] यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित (ममनयुक्त) [मनः] मन को [प्रपद्ये] प्राप्त होऊँ, (ऐसे ही) [साम] सामवेद (की न्याई निदिध्यासन सहित) प्राण को [प्रपद्ये] प्राप्त होऊं, तथा [चक्षु] (उत्तम) चक्षु को वा [श्रोत्रम्] (उत्तम) कान को [प्रपद्ये] प्राप्त होऊं, तथा [वागोजः] वाग्बल अथवा मानस बल को आपकी कृपा से मैं प्राप्त होऊँ, तथा [सहोजः] शरीर बल अथवा नैरोग्य को (मैं प्राप्त होऊँ) (वा) [प्राणापाणौ] प्राण (अर्थात् जिससे ऊर्ध्वं चेष्टा होती है) व अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों [मयि] मेरे शरीर में (दृढ़ हों अर्थात् नैरोग्य बल पुष्टि देने वाले हों)॥

ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त होके उसका वक्ता होऊं, तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थसहित सत्यार्थ मननयुक्त मन को प्राप्त होऊं। "वागोजः" वाग्वल, वक्तृत्ववल मनोविज्ञानवल मुझको आप देवें, अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊं। "सहौजः" नैरोग्यदृढ़त्वादिगुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं। "मयि प्राणापानौ" हे सर्वजनबलशरीरजीवनाधार! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय, सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्य बल पुष्टि सरलगति कराने और मर्मस्थलों की रक्षा करने वाले हों उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आपकी कृपा से हे ईश्वर! सदैव सुखयुक्त आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूं ॥ ५ ॥

स्तुति विषय

सः नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशाना-
स्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ६ ॥

य० ३२ । १० ॥

व्याख्यान—वह परमेश्वर हमारा "बन्धुः" दुःखनाशक और

६. *शब्दार्थ*—[सः] वह (परमेश्वर) [नः] हमारा [बन्धुः] दुःखनाशक व सहायक होने से "बन्धु" है तथा [जनिता] सर्वजगत् के रचने वाला (है), [सः] वह (परमात्मा ही) [विधाता] सब जगत् का निर्माता वा

सहायक है तथा "जनिता" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करने वाला पिता, तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का विधाता पूर्ण काम की सिद्धि करने वाला वही है। सब जगत् का भी विधाता रचने और धारण करने वाला एक परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं। "धामानि वेदेत्यादि" "विश्वा" सब धाम अर्थात् अनेक लोकलोकान्तरों को रच के अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है। वह कौन परमेश्वर है ? कि जिससे देव अर्थात् विद्वान् लोग (विद्वांसो हि देवाः" शतपथब्रा०) अमृत, मरणादि दुःखरहित मोक्ष-पद में (अर्थात्) सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी पूर्णानन्द-स्वरूप परमात्मा को प्राप्त हो के परमानन्द में रहते हैं। "तृतीयेत्यादि" एक स्थूल जगत् (पृथिव्यादि), दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण) तीसरा सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में "अध्यैरयन्त" धर्मात्मा विद्वान लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा) से वर्त्तते हैं। सब बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् शुद्ध होके देश काल वस्तु परिच्छेदरहित सर्वगत "धामन्" आधारस्वरूप परमात्मा में रहते हैं उससे दुःख-सागर में नहीं गिरते ॥ ६ ॥

धारण करने वाला, [विश्वा] सम्पूर्ण [भुवनानि] लोक लोकान्तरों वा [धामानि] स्थानों, जन्मों तथा नामों को [वेद] जानता है [यत्र] जिस (जगदीश्वर) में [देवाः] विद्वान लोग [अमृतम्] मरणादि दुःख रहित मोक्ष पद को [आनशानाः] प्राप्त करते हुए [तृतीये] तीसरे अर्थात् एक स्थूल जगत् (पृथिव्यादि), दूसरा सूक्ष्म (आदि कारण प्रकृति) इनसे न्यारे तीसरे [धामन्] आधारस्वरूप अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म में [अध्यैरयन्त अधि-एरयन्त] (धर्मात्मा विद्वान् लोग) सर्वत्र स्वेच्छा से विचरते हैं ॥

प्रार्थना विषय

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं न पशुभ्यः ।। ७ ।।

य० ३६ । २२ ॥

व्याख्यान—हे महेश्वर दयालो ! जिस-जिस देश से आप "समीहसे" सम्यक् चेष्टा करते हो उस-उस देश से हमको अभय करो अर्थात् जहाँ-जहाँ से हमको भय प्राप्त होनें लगे वहाँ-वहाँ से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो तथा प्रजा से हमको सुख करो, हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहे, भय देनें वाली कभी न हो तथा पशुओं से भी हमको अभय करो। किञ्च किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आपकी कृपा से कभी न हो। जिससे हम लोग निर्भय हो के सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य तथा आपकी भक्ति करें ।। ७ ।।

---

७. *शब्दार्थ*—हे परमेश्वर ! [यतोयतः=यतः+यतः] जिस जिस देश (स्थान) से (आप) [समीहसे] सम्यक् चेष्टा करते हो [ततः] उस २ देश से [नः] हमको [अभयम्] भय रहित अर्थात् अभय [कुरु] करो। तथा [नः] हमको]प्रजाभ्यः] प्रजाओं सें [शम्] सुखी [कुरु] करो– अथवा [पशुभ्यः] पशुओं से [अभयम्] अभय (करो अर्थात् किसी से हमें किञ्च किसी प्रकार का भय न हो) ।।

स्तुति विषय

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।। ८ ।।

य० ३१ । १८ ।।

व्याख्यान— सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरिशयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है। उस पुरुष को मैं जानता हूं अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानें। उसको कभी न भूलें अन्य किसी को ईश्वर न जानें। वह कैसा है ? कि "महान्तम्" बड़ों से भी बड़ा, उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है। "आदित्यवर्णम्" आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है। किंच "तमसः परस्तात्" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष

---

८. *शब्दार्थ*—जिज्ञासुओं ! [अहम्] मैं [एतम्] इस (पूर्वोक्त) [महान्तम्] सबसे बड़े [आदित्य वर्णम्] स्वप्रकाशस्वरूप व विज्ञानस्वरूप [तमसः] अविद्यादि अन्धकार से [परस्तात्] परे (रहित) [पुरुषम्] (सर्वज्ञ पूर्ण) जगदीश्वर को [वेद] जानता हूँ। [तमेव=तम+एव] उसी (परमात्मा को) [विदित्वा] जानकर [मृत्युम्] मृत्यु को (जीव) [अति+एति] उलंघन (पार) कर सकता है। [अन्यः] (बिना परमेश्वर की भक्ति व उसके ज्ञान के) दूसरा कोई [पन्थाः] मार्ग [अयनाय] मुक्ति के लिए [न] नहीं [विद्यते] है।।

उससे रहित ही है तथा स्वभक्त, धर्मात्मा सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादिदोषरहित सद्यः करने वाला वही परमात्मा है। विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के बिना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। "तमेव विदित्वेत्यादि०" उस परमात्मा को जान के जीव मृत्यु को उल्लंघन कर सकता है अन्यथा नहीं। क्योंकि "नाऽन्यः, पन्था, विद्यतेऽयनाय" बिना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है, सब मनुष्यों को इसमें वर्त्तना चाहिये और सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रार्थना विषय

तेजाऽसि तेजो मयि धेहि।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि।
सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

य० १९। ९॥

व्याख्यान—हे स्वप्रकाश! अनन्ततेज! आप अविद्यान्धकार

९. शब्दार्थ—हे परमेश्वर! आप [तेजः] अविद्यान्धकार से रहित

से रहित हो, किंच सत्यविज्ञान तेजःस्वरूप हो। आप कृपादृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो, जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊं। हे अनन्तवीर्य परमात्मन्! आप वीर्य्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें। हे अनन्तपराक्रम! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो, सो मुझ में भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो। "हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत्!" मुझ में भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ, हे अनन्त सहनस्वरूप! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में दूर न हों, जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूं और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूं॥ ९॥

सत्य विज्ञान तेजःस्वरूप [असि] हो [मयि] मुझ में (भी) [तेजः] विज्ञानरूप तेज [धेहि] धारण कीजिए। (आप) [वीर्यम्] वीर्यस्वरूप [असि] हो [मयि] मुझ में (भी) [वीर्यम्] वीर्य अर्थात् सर्वोत्तम बल शौर्य [धेहि] स्थिर कीजिए। (आप) [बलम्] बलस्वरूप [असि] हो [मयि] मुझ में (भी) [बलम्] बल पराक्रम सर्वाङ्ग दृढ़त्व [धेहि] स्थापन करो। आप [ओजः] अनन्त सामर्थ्ययुक्त पाक्रमस्वरूप [असि] हो [मयि] मुझ में (भी) [ओजः] उस पराक्रम अर्थात् पूर्ण सामर्थ्य [धेहि] धारण कराओ। आप [मन्युः] (दुष्टों पर) क्रोधकारी [असि] हो [मयि] मुझ में (भी) [मन्युम्] (दुष्टों के प्रति) क्रोध [धेहि] धारण कराओ। आप [सहः] अत्यन्त सहनस्वरूप [असि] हो [मयि] मुझ में (भी) [सहः] (सुख दुःखादि) सहन सामर्थ्य [धेहि] धारण कराओ॥

स्तुति विषय

**परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्या-
त्मनात्मानमभि संविवेश ।। १० ।।**

य० ३२ । ११ ॥

व्याख्यान—सब जीवों में (अर्थात् आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्यन्त सब संसार में) वह परमेश्वर व्याप्त हो के परिपूर्ण भर रहा है, तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कण भी उसके बिना अपर्याप्त (खाली) नहीं। "प्रथम-जाम्" मुख्य प्राणो अपने आत्मा

---

१०. *शब्दार्थ*—हे विद्वानों ! जो परमेश्वर [भूतानि] आकाशादि सब भूतों में अर्थात् आकाश और प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब संसार में [परीत्य] सब ओर से व्याप्त होकर [लोकान्] (सब) सूर्यादि लोकों में [परीत्य] अभिव्याप्त होकर [च] तथा [सर्वाः] सब [दिशाः] पूर्वादि दिशाओं वा [प्रदिशः] (आग्नेय आदि) उपदिशाओं में [परीत्य] सब ओर से व्याप्त होकर परिपूर्ण भर रहा है और इन सब को यथावत् जानता है। (उस) [प्रथमजाम्] प्रथम सूक्ष्म भूतों के उत्पन्न करने वाले [ऋतस्य] सत्य परमात्मा के [आत्मानम्] यथार्थ स्वरूप को [आत्मना] अपनी आत्मा से (अत्यन्त सत्याचरण श्रद्धा व भक्ति से अपने अन्तःकरण से) [उपस्थाय] निकट प्राप्त होकर अर्थात् यथावत् जानकर [अभिसंविवेश] (अभि+सम्+विवेश) उसके अभिमुख होकर उसमें प्रविष्ट होवें। अर्थात् सब दुःखों से छूट कर सदैव परमानन्दस्वरूप परमात्मा में मोक्ष सुख का लाभ करें॥

से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या, श्रद्धा, भक्ति से "ऋतस्य" यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को "उपस्थाय" यथावत् जान उपस्थि (निकट प्राप्त) "अभिसंविवेश" अभिमुख हो के, उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दुःखों से छूट उसी परमानन्द में रहता है ॥ १० ॥

प्रार्थना विषय

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो
भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वै-
र्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ११ ॥

य० ३४ । ३६ ॥

व्याख्यान—हे भगवन् ! परमैश्वर्यवन् "भग" ऐश्वर्य के दाता, संसार वा परमार्थ में आप ही हो । तथा "भगप्रणेतः" आपके ही

---

११. शब्दार्थ—[भग] हे भगवन् परमैश्वर्यवान् ऐश्वर्य के दाता आप [प्रणेतः] पुरूषार्थ के प्रेरक (ऐश्वर्य के प्रेरक हो) । [भग] हेऐश्वर्य-प्रद भगवन् ! [सत्यराधः] (आप) सत्य ऐश्वर्य तथा मोक्ष की सिद्धि करने वाले हैं । [भग] हे भजनीय परमेश्वर ! [इमाम्] इस [धियम्] सर्वोत्तम बुद्धि को [ददत्] देते हुए [उदव=उत्+अव] उत्कृष्टता से प्राप्त कराओ तथा उत्कृष्टता से रक्षा करो । [भग] हे सर्वेश्वर्योत्पादक ! [नः] हमारे लिये [गोभिः] सर्वोत्तम गौओं, [अश्वैः] सर्वोत्तम घोड़ों आदि (तथा) [नृभिः] सर्वोत्तम मनुष्यों के साथ [प्रजनय] उत्तम ऐश्वर्य को अच्छी प्रकार उत्पन्न कीजिए । [भग] हे भगवन् ! (हम आपकी कृपा से) [प्रनृवन्तः] उत्तम २ पुरुष (तथा स्त्री, सन्तान भृत्यादि) वाले [स्याम] हों ॥

स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको एश्वर्य देओ। सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्रय छेदन करके हमको परमैश्वर्य वाले करें क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। हे "सत्यराध:" भगवन् ! सत्यैश्वर्य की सिद्धि करने वाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिये, तथा जो मोक्ष कहाता हैं उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आप से भिन्न कोई भी नहीं है। हे सत्यभग ! पूर्ण ऐश्वर्य सर्वोत्तम बुद्धि हमको आप दीजिये जिससे हम लोग आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान, ज्ञान इनको यथावत् प्राप्त हों। हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "उद्वा" (उद्गमय-प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें। "भग प्र नो जनय" हे सर्वैश्वर्योत्पादक ! हमारे लिये ऐश्वर्य को अच्छे प्रकार से उत्पन्न कर, सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अत्युत्तम ऐश्वर्य हमको सदा के लिये दीजिये। हे सर्वशक्तिमन् ! आपकी कृपा से सब दिन हम लोग उत्तम-उत्तम पुरुष, स्त्री और सन्तान भृत्य वाले हों। आपसे यह हमारी अधिक प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हम में दुष्ट और मूर्ख न रहे, न उत्पन्न हो जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्त्ति हो, निन्दा कभी न हो ॥ ११ ॥

स्तुति विषय

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य
तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ १२ ॥

य० ४० । ५ ॥

व्याख्यान—"तद् एजति" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य

१२. शब्दार्थ—हे मनुष्यो ! [तत्] वह (ब्रह्म) [एजति] (सब

अपनी-अपनी चाल पर चला रहा है। सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा परन्तु वह सब में पूर्ण है कभी चलायमान नहीं होता। अतएव "तन्नैजति" (यह प्रमाण है) स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता। एक रस निश्चल होके भरा है। विद्वान लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं। "तद् दूरे" अधर्मात्मा, अविद्वान् विचारशून्य अजितेन्द्रिय ईश्वरभक्तिरहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है अर्थात् वे कोटि कोटि वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते। इससे वे तब तक जन्म-मरणादि दुःखसागर में इधर उधर घूमते फिरते हैं कि जब तक उसको नहीं जानते। "तद्वन्तिके" सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील पुरुषों के "अन्तिके" अत्यन्त निकट है, किंच वह सब के आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है। वह आत्मा का भी आत्मा है, क्योंकि परमेश्वर सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके बिना खाली नहीं हैं। वह अखण्डैकरस सब में व्यापक हो रहा है। उसी को जानने से सुख और मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १२ ॥
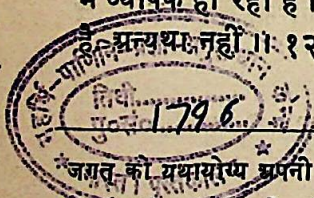
जगत् को यथायोग्य अपनी अपनी चाल पर) चला रहा है। परन्तु [तत्] वह (ब्रह्म) स्वयं [न] नहीं [एजति] चलता है। [तत्] वह (ब्रह्म) [दूरे] (अविद्वान अधर्मात्मा अयोगियों से) बहुत दूर है। (उ) तथा [तत्] वह (ब्रह्म) [अन्तिके] (विद्वान् धर्मात्मा योगियों के) अत्यन्त निकट है। [तत्] वह (ब्रह्म) [अस्य] इस [सर्वस्य] समस्त जगत् के [अन्तरस्य] भीतर (है) [उ] तथा [तत्] वह (ब्रह्म) [अस्य] इस [सर्वस्य] सम्पूर्ण जगत् के [बाह्यतः] बाहर (भी) है ॥

प्रार्थना विषय

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां
वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पता-
मात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां-
ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वर्यज्ञेन कल्पतां
पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च
बृहच्च रथन्तरं च ।
स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापते
प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ।। १३ ।।

य० १८ । २९ ।।

व्याख्यान—(यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञो वै ब्रह्मेत्याद्यैतरेयशतपथ-ब्राह्मण श्रु०) यज्ञ यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव

---

१३. शब्दार्थ—हम लोग [आयु] अपनी समस्त आयु [यज्ञेन] यजनीय पूज्य इष्ट देव परमेश्वर के हेतु (उसके अर्थ) [कल्पताम्] समर्पण करते हैं। (और ऐसे ही) [प्राण] प्राण (जीवन हेतु), [चक्षु] नेत्र (देखने की शक्ति), [श्रोत्रम्] कान (सुनने की शक्ति), [मनः] संकल्पविकल्पात्मक मन, [आत्मा] अपनी आत्मा (चेतन शक्ति), [वाक्] वाणी (बोलने की शक्ति), [ब्रह्मा] वेद विद्या (वा विद्वान), [ज्योतिः] अग्नि सूर्यादि प्रकाशक पदार्थ,

परमेश्वर उसके अर्थ अतिश्रद्धा से सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें—यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वस्वामिन् ईश्वर! जो यह आपकी आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें इस कारण हम लोग "आयुः" उमर, प्राण, चक्षु (आँख), कान, वाणी, मन, आत्मा, जीव, ब्रह्म, वेदविद्या और विद्वान् ज्योति (सूर्यादि लोक अग्न्यादि पदार्थ), स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो-जो अच्छा काम हम लोग करते हैं), स्तोम, स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं। हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं। जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा हमारे लिये आप कीजिये। परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से "स्वरगन्म" उत्तम सुख को प्राप्त हों। जब तक जीवें, तब तक सदा चक्रवर्त्ती राज्यादि भोग से सुखी रहें। और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहें। हे महादेवामृत! हम लोग देव (परम विद्वान्) हों तथा अमृत मोक्ष जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त हों। "वेट् स्वाहा" आपकी आज्ञा का पालन और आपकी

[स्वः] स्वर्ग (सुख साधन), [पृष्टम्] पृथिव्यादि सब आधार अथवा जानने की इच्छा, [यज्ञः] हमारे सब अच्छे २ परोपकार्य के कार्य, [स्तोमः] (सब) स्तुति, [यजुः] यजुर्वेद, [ऋक्] ऋग्वेद, [साम] सामवेद, [च] वा अथर्ववेद, [बृहत्] अत्यन्त बड़ा [रथन्तरम्] सामवेद का स्तोत्र [यज्ञेन] ब्रह्म के ही [कल्पताम्] अर्पण करते हैं। [देवाः] हे विद्वानों! (इस प्रकार हम) [अमृताः] जन्म मरणादि दुःख से रहित [अभूम] हों तथा [स्वः] उत्तम सुख अर्थात् मोक्ष को [अगन्म] प्राप्त हों। हम [प्रजापतेः] उसी सकल संसार के स्वामी जगदीश्वर की [प्रजाः] प्रजा अर्थात् पालने योग्य [अभूम] हों (अथवा) [वेट्] उत्तम क्रिया वा [स्वाहा] उत्तम सत्य वाणी युक्त हों॥

प्राप्ति में उद्योगी हों। तथा अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करें। इससे विपरीत कभी नहीं। हे कृपानिधे! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आप ही सदा करो। आप के सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले ॥ १३ ॥

स्तुति विषय

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि
ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ १४ ॥

य० ८। ३६ ॥

व्याख्यान—जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ, और न है न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना। जो "विश्वा भुवनानि" सब भुवन (लोक) सब पदार्थों के निवासस्थान असंख्यात लोकों को आवेश (प्रविष्ट) हो के पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति

---

१४. *शब्दार्थ*—[यस्मात्] जिस (परमेश्वर) से [परः] उत्तम (बड़ा) [अन्यः] दूसरा [न] नहीं [जातः] उत्पन्न हुआ [अस्ति] है तथा [यः] जो (परमात्मा) [विश्वाः] सब [भुवनानि] लोकों को (में) [आविवेश] प्रविष्ट (व्याप्त) हो रहा है। [सः] वह [प्रजापतिः] सब प्रजा का स्वामी [षोडशी] सोलह कलाओं का स्वामी [प्रजया] सब प्रजा को [संरराणः] रमाता हुआ (तथा सब प्रजा में रमता हुआ) [त्रीणि] तीन [ज्योतींषि] ज्योतियां अर्थात् सूर्य, अग्नि व विद्युत को [सचते] (सब पदार्थों में) स्थापित करता है ॥

(स्वामी) है। सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है। "त्रीणीत्यादि" तीन ज्योति अग्नि, वायु, और सूर्य इनको जिसने रचा है सब जगत् के व्यवहार और पदार्थ-विद्या की उत्पत्ति के लिये इन तीनों को मुख्य समझना। "स षोडशी" सोलह कला जिसने उत्पन्न की हैं इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है। वे सोलह कला ये हैं-ईक्षण (विचार) १, प्राण २, श्रद्धा ३, आकाश ४, वायु ५, अग्नि ६, जल ७, पृथिवी ८, इन्द्रिय ९, मन १०, अन्न ११, वीर्य (पराक्रम) १२, तप (धर्मानुष्ठान) १३, मन्त्र (वेदविद्या) १४, कर्मलोक (चेष्ठास्थान) १५, और लोकों में नाम १६, इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला हैं। उसकी उपासना छोड़ के जो दूसरे की उपासना करता है, वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है॥ १४॥

स्तुति विषय

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ १५ ॥

य० ३। २४॥

व्याख्यान—(ब्रह्म ह्यग्निः, इत्यादिशतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मै-

---

१५. *शब्दार्थ*— [अग्ने] हे विज्ञानस्वरूप ईश्वर! [पितेव= पिता+इव] जैसे पिता [सूनवे] पुत्र के लिए अच्छे २ गुण व ज्ञान प्राप्त कराता है वैसे [सः] सो आप [नः] हमारे लिए [सूपायनः] श्रेष्ठ ज्ञान के प्रापक [भव] हों। तथा [नः] हमको [स्वस्तये] सुख के लिए (के साथ) [सचस्व] सदा संयुक्त कीजिए अर्थात् हमें सदा सुखी रखें॥

वात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने ! आप हमारे लिये "सूपायनः" सुख से प्राप्त श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो। तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो। हे स्वस्तिद परमात्मन् ! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिये सुख का वर्त्तमान सदैव कराओ जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो। "स नः पितेव सूनवे" जैसे करूणामय पिता अपने पुत्र को सुखी ही रखता है, वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उन आपकी शोभा नहीं होना किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की शोभा और बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥

स्तुति विषय

विभूरसि प्रवाहणः वह्निरसि हव्यवाहनः।
श्वात्रोऽसि प्रचेताः। तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ १६ ॥

य० ५। ३१ ॥

व्याख्यान—हे व्यापकेश्वर ! आप विभु हो अर्थात सर्वत्र प्रका-

---

१६. *शब्दार्थ*—हे व्यापकेश्वर ! आप [विभुः] आकाश की न्याई सर्वत्र व्यापक तथा वैभव ऐश्वर्य युक्त (केवल आप ही) [असि] हो तथा [प्रवाहणः] सब जगत् को नियमपूर्वक चलाने वाले सबके निर्वाह कारक (भी आप ही हो)। हे प्रकाशस्वरूप ! आप [वह्निः] (अग्नि की न्याई) प्रकाशक तथा सर्वरसवाहक वा [हव्यवाहनः] सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक, आकर्षक तथा यथावत् स्थापक [असि] आप (हो)। हे परमात्मन् ! आप [श्वात्रः] प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप वा उत्कृष्ट ज्ञान के दाता तथा [प्रचेताः] [तुथः] ज्ञानवर्धक (तथा) [विश्ववेदाः] विश्व में विद्यमान् तथा उसको जानने वाले [असि] आप (ही) हो ॥

शित वैभवैश्वर्ययुक्त हो किन्तु और कोई नहीं। विभु आप सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलाने वाले) तथा सबके निर्वाह-कारक भी हो। हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर! आप वह्नि हैं अर्थात् सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक, आकर्षक तथा यथावत् स्थापक हो। हे आत्मन! आप शीघ्र व्यापनशील हो। तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप प्रकृष्ट ज्ञान के देने वाले हो। हे सर्ववित्! आप तुथ और विश्ववेदा हो। "तुथो वै ब्रह्म" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान, प्राप्त और लाभ कराने वाले हो ॥ १६ ॥

स्तुति विषय

उशिगसि कविः। अङ्घारिरसि बम्भारिः। अवस्यूरसि दुवस्वान्। शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानः। नभोऽसि प्रतक्वा। मृष्टोऽसि हव्यसूदनः। ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ १७ ॥

य० ५। ३२ ॥

व्याख्यान—हे सर्वप्रिय! आप "उशिक्" कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग जिसको चाहते हैं। क्योंकि आप कवि पूर्ण विद्वान् हो तथा अङ्घारि हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु)

---

१७. *शब्दार्थ*—(हे सर्वप्रिय! आप) [उशिक्] कमनीयस्वरूप अर्थात् सबकी कामना करने योग्य [असि] हो (क्योंकि आप) [कविः] पूर्ण विद्वान् (हो)। (आप) [अङ्घारी] (स्वभक्तों के) पाप के शत्रु अर्थात् सर्व पापनाशक हो (तथा) [बम्भारिः] सबके पालनकर्ता (वा [illegible] के नाश करने वाले)

हो। उस समस्त पाप के नाशक हो। तथा "बम्भारिः" स्वभक्तों और सर्व जगत् के पालन तथा धारण करने वाले हो! "अवस्यूरसि दुवस्वान्" अन्नादि पदार्थ अपने भक्तों धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम हो। "शुन्ध्यूरसि, मार्जालीयः" शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करने वाले आप ही हो। अन्य कोई नहीं। "सम्राडसि कृशानुः" सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीनजनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो। "परिषद्योसि पवमानः" हें न्यायकारिन्! पवित्र परमेश्वर, सभा के आज्ञापक, सभ्य, सभापति, सभाप्रिय, सभारक्षक आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप पवित्रकारक सभा से हो सुखदायक पवित्र, प्रिय आप ही हो, "नभोऽसि प्रतक्वा" हे निर्विकार! आकाशवत् आप क्षोभरहित अतिसूक्ष्म होने से

हो, [अवस्युः] (आप) सबके अन्न दाता (तथा) [दुवस्वान्] विद्वानों से परिचरणीय अर्थात् सेवनीयतम [असि] हो, [शुन्ध्युः] शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक (तथा) [मार्जालीयः] सब पाप के मार्जन अर्थात् निवारण करने वाले [असि] हो। [सम्राट्] सब राजाओं के महाराज (तथा) [कृशानुः] कृश अर्थात् दीनजनों के प्राण के सुखदाता [असि] (आप ही) हो। [परिषद्यः] सभापति (तथा) [पवमानः] पवित्रस्वरूप वा पवित्र-कारक [असि] (आप ही) हो। [नभः] आकाशवत् अति सूक्ष्म व क्षोभरहित (वा) [प्रतक्वा] सबके साक्षी वा सबको यथावत् पाप पुण्य के फल प्रदाता [असि] (आप ही) हो, [मृष्टः] शुद्धस्वरूप तथा सब पापों के शोधक वा [हव्यसूदनः] सब हव्य अर्थात् द्रव्यों के विभागकर्ता व उनसे वायु वृष्टि की शुद्धि करने वाले [असि] (आप ही) हो, [ऋतधामा] सत्यधाम अर्थात् सर्वगत सत्य व्यवहार में ही निवास करने वाले (तथा) [स्वः] सुखस्वरूप वा सुखकारक (तथा) [ज्योतिः] स्वप्रकाशस्वरूप वा सबके प्रकाशक [असि] (आप ही) हो॥

आपका नाम नभ है तथा "प्रतक्वा" सबके ज्ञाता। सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखने वाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो उसको वैसा फल मिले अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को भी न मिले। "मृष्ठोसि हव्यसूदनः" मृष्ट शुद्धस्वरूप सब पापों के मार्जक शोधक तथा "हव्यसूदनः" मिष्ट सुगन्ध रोगनाशक पुष्टि-कारक, इन द्रव्यों से वायु वृष्टि की शुद्धि करने कराने वाले हो अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्ता आप ही हो। इससे आपका नाम "हव्यसूदन" है। "ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः" हे भगवन्! आप का ही धाम स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थस्वरूप है। यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो। "स्वः" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा "ज्योतिः" स्वप्रकाश और सब के प्रकाशक आप ही है॥ १७॥

स्तुति विषय

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः। अजोऽस्येकपात्। अहिरसि बुध्न्यः। वागस्यैन्द्रमसि सदोऽसि। ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्। अध्वना-मध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात्॥ १८॥

य० ५। ३३॥

व्याख्यान—"समुद्रोऽसि विश्वव्यचाः" हे द्रवणीयस्वरूप! सब

---

१८. शब्दार्थ—हे परमेश्वर! (आप) [समुद्रः] समुद्र अर्थात् सब भूतमात्र समुद्र की न्याईं आप में द्रवे हैं। तथा (आप) [विश्वव्यचाः]

भूतमात्र आप ही में द्रवै हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं। आप सबके कारण हो तथा सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है। इससे आप "विश्वव्यचाः" हैं। "अजोस्येकपात्" आपका जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आपके किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो। "अहिरसि बुध्न्यः" आपकी हीनता कभी नहीं होनी तथा सब जगत् के मूल कारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो। "वागस्यैन्द्रमसि सदोसि" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्तविद्यास्वरूप होने से आप वाक् हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप ऐन्द्र हो। सब संसार आप में ठहर रहा है, इससे आप सदः (सभास्वरूप) हो। "ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्" सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्ष-स्वरूप आपकी प्राप्ति के द्वार हैं, उनको सन्तापयुक्त हम लोगों के लिये कभी मत रक्खो, किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रक्खो, जिससे हम

सब जगत् के कारण व उसमें व्यापक [असि] हो। (आप) [अजः] अजन्मा (वा) [एकपात्] एक पाद अर्थात् सब जगत् आपके एक देश में है और आप अनन्त [असि] हो। (आप) [अहिः] हीनता रहित (वा) [बुध्न्यः] अन्तरिक्ष में भी सदा पूर्ण [असि] हो रहे हो। (आप) [वाक्] वेदों के तथा (अन्तर्यामी) रूप से सबके उपदेष्टा [असि] हो (वा) [एन्द्रम्] परमैश्वर्यस्वरूप [असि] हो (तथा) [सदः] सब संसार के ठहरने का स्थान [असि] हो। [ऋतस्य] सत्य अर्थात् मोक्ष के [द्वारौ] दोनों द्वार अर्थात् सत्यविद्या और धर्म [मा मा] (हम लोगों के लिए) कभी नहीं [सन्ताप्तम्] सन्तापयुक्त रक्खो अर्थात् सदा खुले रक्खो। [अध्वपते] हे धर्म के पालन कराने वाले! [अध्वानाम्] परमार्थ वा व्यवहार मार्गों में [मा] मुझको [प्रतर] पार कर अर्थात् कभी क्लेश न होवे। [देवयाने] देवों (विद्वानों) के [अस्मिन्] इस [पथि] मार्ग में [मा] मुझे [स्वस्ति] (सदा) आनन्द (ही) [भूयात्] रहे॥

लोग सहज से आपको प्राप्त हों। "अध्वनामित्यादि" हे अध्वपते! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझको कहीं क्लेश मत होने दे, किन्तु उन मार्गों में मुझको स्वस्ति (आनन्द) ही आपकी कृपा से रहे, किसी प्रकार का दुःख न रहे ॥ १८ ॥

स्तुति विषय

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
एनस एनसोऽवयजनमसि ।
यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार ।
यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽ-
वयजनमसि ॥ १९ ॥ य० ८ । १३ ॥

व्याख्यान—हे सर्वपापप्रणाशक! "देवकृत०" इन्द्रिय विद्वान्

---

१९. *शब्दार्थ*— (हे सर्व पाप प्रणाशक)! [देवकृतस्य] विद्वानों वा दिव्यगुण युक्त जन के किए हुए [एनसः] पाप के [अवयजनम्] पृथक करने वाले अर्थात् दूर करने वाले [असि] (केवल आप ही) हो (एवं) [मनुष्य कृतस्य] मनुष्य (साधारण जन) के किए हुए [एनसः] पाप के [अवयजनम्] नाश करने वाले (भी) [असि] (केवल आप ही) हो। [पितृकृतस्य] परम विद्यायुक्त महाजनों के [एनसः] पाप के [अवयजनम्] नाश करने वाले (भी) [असि] (केवल आप ही) हो। [आत्मकृतस्य] जीव के अपने द्वारा किए [एनसः] पाप के [अवयजनम्] दूर करने वाले

और दिव्यगुणयुक्त जन के दुःख के नाशक एक आप ही हो अन्य कोई नहीं। एंव मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परमविद्यायुक्त जन) और "आत्मकृत०" जीव के पापों तथा "एनस०" पापों से भी बड़े पापों से आप ही अवयजन हो अर्थात् सर्व पाप से अलग हो, और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखने वाले एक आप ही दयामय पिता हो। हे महानन्तविद्य ! जो जो मैंनें विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया हो, उन सब पापों का छुड़ाने वाला आपके बिना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छूड़ा के हमको शुद्ध करो॥ १९॥

स्तुति विषय

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २०॥

य० १३।४॥

व्याख्यान—जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ

(भी) [असि] (केवल आप ही) हो। अर्थात् आप सर्व पाप रहित हो। [एनस एनसः] पापों से भी बड़े पापों से [अववजनम्] रहित [असि] (केवल आपही) हो अर्थात् आप सर्व पाप रहित हो। [यत्] जो [च] कुछ भी [अहम्] मैंने [एनः] पाप [चकार] किया हो अथवा [यत्] जो [च] कुछ भी [अविद्वान्] अविद्या में अर्थात् अनजाने (पाप किया हो) [तस्य] उस [सर्वस्य] सब [एनसः] पाप के [अवयजनम्] छुड़ाने वाले [असि] (केवल आप ही) हो॥

२०. *शब्दार्थ*—[हिरण्यगर्भः] (वह परमात्मा) जिसके गर्भ में सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ हैं अर्थात् उनका उत्पत्ति स्थान वा धारणकर्त्ता है, जो

(जो सूर्य्यादि तेजस्वीपदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक) है सो ही प्रथम था। वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है। वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्यन्त जगत् को रच के धारण करता हैं। "कस्मै" (कः प्रजापतिः ! प्रजापतिर्वै कस्तस्मै देवाय। शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करें, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें, जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है उसकी और उस देश भर का अत्यन्त दुर्दशा होती है यह प्रसिद्ध है। इससे चेतो मनुष्यों ! जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो, अन्यथा तुम को कभी सुख न होगा ॥ २० ॥

प्रार्थना विषय

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ २१ ॥

य० ३६। ८॥

व्याख्यान—हे इन्द्र ! आप परमैश्वर्यंयुक्त सब संसार के राजा

[अग्रे] सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व [समवर्तन] (प्रथम) था। (वही) परमात्मा [भूतस्य] सब उत्पन्न हुए जगत् का [एकः] एक ही अद्वितीय [पतिः] स्वामी पालक [जातः] प्रसिद्ध रचयिता [आसीत] था (वा) है। [सः] वह ही परमात्मा [इमाम्] इस (प्रत्यक्ष) [पृथिवीम्] पृथिवी [उत] वा [द्याम्] प्रकाशमय सूर्यादि को [दाधार] धारण कर रहा है। [कस्मै] (उस) सुखस्वरूप प्रजापति [देवाय] सर्व सुखदाता परमात्मा के लिए [हविषा] आत्मादि पदार्थों के समर्पण से [विधेम्] पूजा (विशेष भक्ति) यथावत् करें॥

२१. शब्दार्थ— [इन्द्रः] परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा [विश्वस्य]

हो, सर्व प्रकाशक हो। हे रक्षक! आप कृपा से हम लोगों के "द्विपदे" जो पुत्रादि, उनके लिये परमसुखदायक हो। तथा "चतुष्पदे" हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परमसुखकारक हो। जिससे हम लोगों को सदा आनन्द ही रहे ॥ २१ ॥

प्रार्थना विषय

शं नो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो ऽअभिवर्षतु ॥ २२ ॥

य० ३६ । १० ॥

व्याख्यान—हे सर्वनियन्तः! हमारे लिये सुखकारक शीतल, मन्द और सुगन्ध वायु सदैव चले। ऐसे सूर्य भी सुखकारक तपे। तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल काल में सुखकारक वर्षा वर्षे। जिससे आपके कृपापात्र हम लोग सुखानन्द हो में सदा रहें ॥ २२ ॥

(इस) सब संसार पर [राजति] राज्य कर रहा है। (वह अपनी कृपा से) [नः] हम लोगों के [द्विपदे] पुत्रादि (दोपायों) के लिए [शम्] परम सुखदायक (हो तथा हमारे) [चतुष्पदे] गायादि चौपायों (पशुओं) के लिए (भी) [शम्] परम सुखकारक [अस्तु] हो ॥

२२. *शब्दार्थ*—(हे सर्वनियन्तः!) [नः] हमारे लिए [वातः] वायु [शम्] सुखकारक (सुगन्धित, शीतल वा मन्द मन्द) [पवताम्] चले (एवं) [सूर्यः] सूर्य (भी) [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक [तपतु] तपे (तथा) [नः] हमारे लिए [कनिक्रदत्] गर्जनपूर्वक (अत्यन्त शब्द करता हुआ) [देवः] दिव्यगुण युक्त [पर्जन्यः] मेघ (भी) [अभिवर्षतु] ठीक समय पर सब ओर से वर्षा करे ॥

प्रार्थना विषय

अहानि शं भवन्तु नः
शꣳरात्रीः प्रतिधीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नीभवतामवोभिः
शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ।। २३ ।।

य० ३६ । ११।।

व्याख्यान—हे क्षणादिकालपते ! सब दिवस आप के नियम से सुखरूप ही हमको हों। हमारे लिये सर्व रात्रि भी आनन्द से बीतें। हे भगवन् ! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप स्थापन करो जिससे सब समय में हम लोग सुखी हो रहें। हे सर्वस्वामिन् !

---

२३. *शब्दार्थ*—(हे परमेश्वर) [अवोभिः] सुरक्षादि सहित नानाविध रक्षाओं से [शयोः] सुख की [सुविताय] प्रेरणा के लिए [नः] हमारे लिए [अहानि] सब दिन [शम्] सुखकारक [भवन्तु] हों। [रात्रीः] सब रात्रि [शम्] कल्याण के [प्रति] प्रति [धीयताम्] हमको धारण करें। [इन्द्राग्नी] सूर्य तथा अग्नि यह दोनों [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक [भवताम्] हों। [रातहव्या] होम से शुद्ध हुए (इन्द्रावरुणा) वायु और जल [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक (हों) [वाजसातौ] युद्ध में [इन्द्रा-पूषणा] आयु वा बलयुक्त प्राण [नः] हमारे लिए [शम्] सुखकारक हों तथा (हमारे लिए) [इन्द्रा-सोमा] विद्युत व ओषधीगण [शम्] सुखकारक हों ।।

"इन्द्राग्नी" सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आपके अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों। "इन्द्रावरुणा रातहव्या" हे प्राणाधार। होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों। "इन्द्रापूषणा, वाजसातौ" हे प्राणपते! आपकी रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राण वाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहैं, जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों। "इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी इत्यादि शतपथे) हे महाराज! आपके प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि-सत्यगुणयुक्त हो के अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करें। तथा आपकी कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हों। अत्यन्त सुख लाभों को प्राप्त हों। आप हम पुत्र लोगों को सुखी देख के अत्यन्त प्रसन्न हों, और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उसमें हो तत्पर हों॥ २३॥

स्तुति विषय

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्
गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य
यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत्॥ २४॥

य० । ३२ । ९॥

व्याख्यान—हे वेदादि शास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने

२४. *शब्दार्थ*—[गन्धर्वः] सर्वगत ब्रह्म वा वेदविद्या का धारण करने वाला [विद्वान्] पण्डित [गुहा] हृदय में [विभृतम्] विशेष से धृत [अमृतम्] मरणादि दोष रहित [धाम] (जो) मुक्ति का धाम

योग्य ! जो अमृत (मरणादि दोषरहित) मुक्तों का धाम (निवास स्थान) सर्वगत सबका धारण और पोषण करने वाला, सबकी बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है, उस आपका उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है, वह गन्धर्व कहाता है। (गच्छतीति गं-ब्रह्म, तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करने वाला, उसका नाम गन्धर्व है तथा परमात्मा के तीन पद हैं—जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य। तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है, वह पिता का भी पिता है। अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है॥ २४॥

प्रार्थना विषय

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिस्सर्वꣳ शान्तिश्शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥ २५॥ य० ३६। १७॥

व्याख्यान—हे सर्वदुःख की शान्ति करने वाले ! सब लोकों से

(स्थान) है [तत्] उस [सत्] नित्य चेतन ब्रह्म का [नु] शीघ्र [प्रवोचेत्] प्रकृष्टतया (गुण, कर्म, स्वभाव सहित) उपदेश करे। और]अस्य] (जो) इस (अविनाशी ब्रह्म) के [गुहा] ज्ञान में [निहिता] स्थित [त्रीणि] तीन (उत्पत्ति, स्थिति वा प्रलय करने का सामर्थ्य) [पदानि] पद (जानने योग्य) (हैं) [तानि] उनको [वेद] जानता है [सः] वह [पितुः] पिता का (अर्थात् विद्वानों का भी) [पिता] पिता अर्थात् विद्वान् [असत्] होता है॥

२५. शब्दार्थ—हे सर्वदुःख की शान्ति करने वाले (हमारे लिए)

ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहें। अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, औषधि, तत्रस्थगुण, वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ, विश्वेदेव (जगत् के सब विद्वान्) तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थगुण, ब्रह्म परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म, चराऽचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्वशक्तिमान् परमात्मन्! आपकी कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों। मुझको भी शान्ति प्राप्त हो, जिससे मैं भी आपकी कृपा से शान्त दुष्ट क्रोधादि उपद्रवरहित होऊं तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्टक्रोधादि उपद्रवरहित हों ॥ २५ ॥

[द्यौः] सूर्यादि प्रकाशयुक्त पदार्थ (अथवा सब लोकों के ऊपर आकाश) [शान्तिः] शान्त अर्थात् सुख कारक, [अन्तरिक्षम्] लोकों के मध्य का आकाश [शान्ति] शान्तिकारी, [पृथिवी] पृथिवी [शान्तिः] सुखकारक, निरुपद्रव, [आपः] जल [शान्तिः] शान्तिदायक, [ओषधयः] सोमलतादि ओषधियें [शान्तिः] सुखदायी, [वनस्पतयः] वनस्पति (वटादि) [शान्तिः] शान्तिकारक, [विश्वे] सब [देवाः] विद्वान् लोग [शान्तिः] उपद्रव निवारक, [ब्रह्म] परमात्मा तथा वेद [शान्तिः] सुखदायी, [सर्वम्] सम्पूर्ण पदार्थ [शान्तिः] सुखदायी, [शान्तिः] शान्ति (दुष्टक्रोधरहित) [एव] ही [शान्तिः] सुखदायक हो। [सा] वह [शान्तिः] सुख [मा] मुझको [एधि] प्राप्त होवे ॥

स्तुति विषय

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च ।
नमः शिवाय च शिवतराय च ।। २६ ।।

य० १६ । ४१ ।।

व्याख्यान—हे कल्याणस्वरूप कल्याणकर ! आप शंभव हो, (मोक्षसुखस्वरूप और मोक्षसुख के करने वाले हो), आपको नमस्कार है। आप मयोभव हो, सांसारिक सुख के करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूं। आप शंकर हो, आपसे ही जीवों का कल्याण होता है, अन्य से नहीं। तथा मयस्कर अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करने वाले आप ही हो। आप शिव (मंगलमय) हो। तथा आप शिवतर (अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक) हो। इससे आपको हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं, (नमो नम इति यज्ञः शतपथे) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता हैं, सो मंगलमय ही होता है ।। २६ ।।

---

२६. *शब्दार्थ*— [शम्भवाय] मोक्षसुखस्वरूप वा मोक्षसुख के दाता ईश्वर को [नमः] नमस्कार हो। [च] और]मयोभवाय] सांसारिक सुख के दाता को [नमः] नमस्कार हो। [च] और [शंकराय] जीवों के कल्याणकारी को [नमः] नमस्कार हो। [च] और [मयस्कराय] मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख देने वाले को [च] भी (नमस्कार हो)। [शिवाय] मंगलमय परमेश्वर को [नमः] नमस्कार हो [च] और [शिवतराय] अनन्त कल्याणस्वरूप वा कल्याणकारक को [च] भी (हमारा नमस्कार हो) ।।

प्रार्थना विषय

भद्रं कर्णेभि शृणुयाम देवा
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभि-
र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥

य० २५ । २१ ॥

व्याख्यान—हे देवेश्वर ! दे वविद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें। हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आँखो से कल्याण (मंगलसुख) को ही सदा देखें। हे जनो ! हे जगदीश्वर ! हमारे सब अंग उपांग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपांग) स्थिर (दृढ़) सदा रहैं, हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें। तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविधसुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें ॥ २७ ॥

---

२७. *शब्दार्थ*— हे देवेश्वर ! [यजत्राः] यज्ञकर्त्ता [देवाः] विद्वानो ! (हम लोग) [कर्णेभिः] कानों से [भद्रम्] (सदैव) कल्याण को ही [शृणुयाम्] सुनें, [अक्षभिः] आंखों से [भद्रम्] कल्याण को (ही) [पश्येम्] देखें, [स्थिरैः] दृढ़ [अङ्गैः] अङ्गों से [तुष्टुवासः] (आप ब्रह्म की) स्तुति करते हुए [तनूभिः] विस्तृत बलवान् शरीरों से [यत] जो [देवहितम्] विद्वानों की हितकारक [आयुः] दीर्घ आयु (है उसको) [व्यशेमहि] प्राप्त हों ॥

स्तुति विषय

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ता-
द्विसीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च विवः ।। २८ ।।

य० १३ । ३ ।।

व्याख्यान—हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो। आपसे बड़ा वा आपके तुल्य कोई नहीं है। "जज्ञानम्" सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो। सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो। सूर्यादि लोक "सीमतः" सीमा से युक्त (मर्यादासहित) "सुरुचः" आपसे प्रकाशित हैं। "पुरस्तात्" इनको पूर्व रच के आप

---

२८. **शब्दार्थ**—जो [पुरस्तात्] सृष्टि की आदि में [जज्ञानम्] सर्वजगत् में प्रादुर्भूत (व्यापक) [प्रथमम्] (तथा) सब जगत् का आदि कारण (उत्पादक) [ब्रह्म] सबसे बड़ा ब्रह्म (परमेश्वर) [सुरुचः] सु प्रकाशमान् तथा सुन्दर रुचि का विषय [वेनः] आनन्दस्वरूप वा कमनीयतम (है) [अस्य] उस (जगदीश्वर) [बुध्न्यः] अन्तरिक्षान्तर्गत सूर्यादिलोक (तथा दिशादि पदार्थ) [विष्ठाः] विविध जगत् के निवास स्थान [उपमाः] उपमा अर्थात् ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त (हैं उन सब लोकों को) [सः] वह जगदीश्वर [वि आवः] अपनी व्याप्ति से आच्छादित करता हुआ विविध नियमों से पृथक् २ यथायोग्य वर्ता रहा है (तथा) [सीमतः] सीमित (मर्यादा सहित) [सत्] विद्यमान् स्थूल जगत् [च] तथा [असत्] अदृश्यमान कारण जगत् अर्थात् प्रकृति के [योनिम्] आकाशरूप स्थान को [विवः] विवृत अर्थात् विभाग करता है (वही ईश्वर उपासना के योग्य हैं) ।।

ही धारण कर रहे हो। "वेनः" आपके आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आपकी कामना न करे, किन्तु सब ही आपको मिला चाहते हैं। तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो। सब रीति से रक्षक आप ही हो। सो ही परमात्मा "बुध्न्या" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "विवः" विवृत (विभक्त) करता है। वे अन्तरिक्षादि उपमा सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं। "सत्" विद्यमान स्थूल जगत् "असत्" अविद्या चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर इस विविध जगत् की योनि आदिकारण आपको ही वेदशास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं। इससे इस जगत् के माता पिता आप ही हैं, हम लोगों को भजनीय इष्ट देव हैं ॥ २८ ॥

प्रार्थना विषय

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ २९ ॥

य० ६ । २२, ३६ । २३ ॥

व्याख्यान—हे सर्वमित्रसम्पादक ! आपकी कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और ओषधि "सुमित्रियाः" सुखदायक हम लोगों के

---

२९. शब्दार्थ—हे सर्वमित्र ! [आपः] जल (व प्राण तथा) [ओषधयः] ओषधियां [नः] हमारे लिये [सुमित्रियाः] (सदा) सुखदायक [सन्तु] होवें (और वे ही) [यः] जो (अधर्मी) [अस्मान्] हम से (धार्मिकों से) [द्वेष्टि] द्वेष (शत्रुता) करता है [च] और [यम्] जिस (अधर्मी) से [वयम्] हम (धर्मात्मा लोग) [द्विष्मः] द्वेष करते हैं [तस्मै] उनके लिए [दुर्मित्रियाः] प्रतिकूल दुःखदायक हों ॥

लिये सदा हों। कभी प्रतिकूल न हों। और जो हमसे द्वेष अप्रीति शत्रुता करता है, तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं, हे न्यायकारिन्! उसके लिये "दुर्मित्रियाः" पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल दुःखकारक ही हों। अर्थात् जो अधर्म करे, उसको आपके रचे जगत् के पदार्थ दुःखदायक ही हों जिससे वह अधर्म न करे और हमको दुःख न दे सके। हम लोग सदा सुखी ही रहें॥ २९॥

प्रार्थना विषय

यऽइमा विश्वा भुवनानि जुह्व-
दृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
सऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः
प्रथमच्छदवराँ२॥ऽआविवेश॥ ३०॥

य० १७। १७॥

व्याख्यान—"होता" उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सब को लेने वाला परमात्मा ही है। "ऋषिः" सर्वज्ञ इन सब

---

३०. *शब्दार्थ*—[यः] जो [ऋषिः] सर्वज्ञ वा [होता] उत्पत्ति समय में देने वा प्रलय समय में सबको लेने वाला [नः] हमारा [पिता] पालक (है और) [इमानि] इन [विश्वानि] सब [भुवनानि] लोकान्तरों को [जुह्वत्] प्रलय करके [न्यसीदत्] नित्य अवस्थित रहता है। [सः] वह (जब) [द्रविणम्] द्रव्यरूप जगत् को [इच्छमानः] उत्पन्न करने की इच्छा करता है (तब) [आशिषा] अपने सामर्थ्य से (आशीर्वाद से) [प्रथमच्छत्] विस्तीर्ण जगत् को रच कर अपने अनन्त स्वरूप से आच्छादित कर देता है (और) [अवरान्] सम्पूर्ण आकाशादि में [आविवेश] अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है। (उसीकी उपासना करनी योग्य है)॥

लोक लोकान्तर भुवनों का अपने सामर्थ्य कारण में होम (प्रलय करके) "न्यसीदत्" नित्य अवस्थित है। सो ही हमारा पिता है। फिर जब "द्रविण" द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है, उस "आशिषा" सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है। इस चराचर "प्रथमच्छत्" विस्तीर्ण जगत् को रचके अनन्तस्वरूप से आच्छादित करता है। और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप उसमें प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर प्रविष्ट हो रहा है। वही हमारा निश्चित पिता है। उसको सेवा छोड़के जो मनुष्य अन्य मूर्त्यादि को सेवा करता है, वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सदैव दुःखभागी होता है। जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है, वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है।। ३०।।

स्तुति विषय

इषे पिन्वस्व। ऊर्जे पिन्वस्व।
ब्रह्मणे पिन्वस्व। क्षत्राय पिन्वस्व।
द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व।
धर्मासि सुधर्म। अमेन्यस्मे
नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय
क्षत्रं धारय विशं धारय।। ३१।।

य० ३८। १४।।

व्याख्यान—हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर! हमको "इषे" उत्तमान्न के लिये पुष्टकर। अन्न के अपचन वा कुपथ्य के रोगों से बचा तथा बिना

३१. शब्दार्थ— (हे सर्वं सौख्यप्रदेश्वर!) हमको [इषे] उत्तम

अन्न के दुखी हम लोग कभी न हों। हे महाबल ! "ऊर्जे" अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर। हे वेदोत्पादक ! "ब्रह्मणे" सत्य वेदविद्या के लिये वृद्धयादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर। हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों। हे स्वर्गपृथिवीश ! "द्यावापृथिवीभ्याम्" स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको समर्थ कर। हे सुष्ठु धर्मशील ! तू धर्मकारी हो, तथा धर्मस्वरूप ही हो। हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर। "अमेनि" तू निर्वैर है। हमको भी निर्वैर कर। तथा कृपादृष्टि से "अस्मे" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "नृम्णानि" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि

अन्न के लिए [पिन्वस्व] पुष्टकरो, [ऊर्जे] अत्यन्त पराक्रम के लिए (हमको) [पिन्वस्व] पुष्टकर, [क्षत्राय] (अखण्ड चक्रवर्ती राज्ज के लिए) शौर्य, धैर्य, पराक्रम बलादि से (हमको) [पिन्वस्व] पुष्टकर, [द्यावापृथिवीभ्याम्] द्यौ अर्थात् परमोत्कृष्ट मोक्ष सुख तथा पृथिवी अर्थात् ससारिक सुख के लिए (हमको) [पिन्वस्व] पुष्टकर। [सुधर्म] हे सुष्टु धर्मशील ! (आप) [धर्म] धर्मकारी अर्थात् न्यायकारी [असि] हो (हमको भी कृपया धर्मात्मा करो)। (हे सर्वहितकारकेश्वर ! आप) [अमेनि] निर्वैर हो (हमको भी निर्वैर करो)। [अस्मे] हमारे लिए [नृम्णानि] उत्तम धनों (अन्न, सुवर्ण इत्यादि) को [धारय] धारण करो। (तथा) हमारे राज्य में [ब्रह्म] ब्राह्मण (पूर्ण-विद्यादिसद्गुणयुक्त) [धारय] धारण करो (तथा) [क्षत्रम्] क्षत्रिय बुद्धि विद्या शौर्यादिगुणयुक्त [धारय] करो (वा) [विशम्] वैश्य विद्या धन धान्ययुक्त (तथा शूद्रादि भी उत्तम सेवा युक्त) [धारय] धारण करो जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपासे सदा बना रहे ॥

रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर, जिससे हम लोग किसी पदार्थ के बिना दुखी न हों। हे सर्वाधिपते ! ब्राह्मण पूर्णविद्यादिसद्गुणयुक्त, क्षत्र बुद्धि विद्या तथा शौर्यादिगुणयुक्त, "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि बलयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुणयुक्त उत्तम हमारे राज्य में हों इन सबका धारण आप ही करो, जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे ।। ३१ ।।

स्तुति विषय

किᳬस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं
कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा
विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ।। ३२ ।।

य० १७ । १८ ।।

व्याख्यान—(प्रश्नोत्तर विद्या से) इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण और उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा

३२. *शब्दार्थ*— प्रश्न :— (हे विद्वान् ! इस जगत् का) [अधिष्ठानम्] अधिष्ठ आश्रय (आधार) [किंस्वित्] क्या [आसीत्] है (तथा) [आरम्भणम्] (इस कार्य जगत् की रचना का) आरम्भण कारण (अर्थात् उत्पादक) [कतमत् स्वित्] कौनसा तथा [कथा] किस प्रकार का [आसीत्] है ।

उत्तर :— [यतः] जिस (जो) [विश्वकर्मा] इस समस्त जगत् का कर्ता वा [विश्वचक्षा] इस समस्त संसार का द्रष्टा (है) (वह) [भूमिम्] पृथिवी (वा) [द्याम्] सूर्यादि लोकों को [जनयन्] उत्पन्न करके (उन्हें) [महिमा] (स्व) महिना से [वि] विविध प्रकार [और्णोत्] आच्छादित करता है (वही इस संसार का अधिष्ठान निमित्त और साधनादि है) ।।

रचना करने वाला अधिष्ठान क्या हैं? तथा निमित्तकारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं? (उत्तर) "यत:" जिसका विश्व (जगत कर्म) किया हुआ है उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त-सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है। वही इस सब जगत् का अधिष्ठान निमित्त और साधनादि है उसने अपने अनन्तसामर्थ्य से इस सब जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से ले के स्वर्गपर्यन्त रच के अपनी महिमा से "और्णोत्" आच्छादित कर रक्खा है। और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं। सबका भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है! तथा आनन्दमय है। और वह ईश्वर "विश्वचक्षा:" सब संसार का द्रष्टा है। उसको छोड़के अन्य का आश्रय जो करता है वह दु:खसागर में क्यों न डूबेगा? ॥ ३२ ॥

प्रार्थना विषय

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।
आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि।
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृण ॥ ३३ ॥

य० ३। १७॥

व्याख्यान—सर्वरक्षकेश्वराग्ने! तू हमारे शरीर का रक्षक है।

३३. *शब्दार्थ*—[अग्ने] हे सर्व रक्षेश्वर! [तनूपा] (आप हमारे) शरीरों के रक्षक [असि] हो, (सो कृपा करके) [मे] मेरे [तन्वं] शरीर का [पाहि] पालन (रक्षा) करो। [अग्ने] हे महा वैद्य परमेश्वर! (आप) [आयुर्दा] आयु बढ़ाने वाले हो, [मे] मुझको [आयु:] (सुखस्वरूप उत्तम) आयु [देहि] दीजिए। [अग्ने] हे अनन्त विद्या तेजयुक्त (आप) [वर्चोदा] विद्यादि तेज अर्थात् यथार्थ ज्ञान के देने वाले हो, [मे] मुझे [वर्च:]

सो शरीर की कृपा से पालन कर। हे महावैद्य। आप आयु (उमर) बढ़ाने वाले हो। मुझको सुखरूप उत्तमायु दीजिये। हे अनन्त विद्यातेजयुक्त! आप "वर्च" विद्यादि तेज अर्थात् यथार्थ विज्ञन देने वाले हो मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ। पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से सदा हमको आनन्द में रक्खो और जो जो कुछ भी शरीरादि में "ऊनम्" न्यून हो, उस उस को कृपा दृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सब प्रकार से आप पूर्ण करो। किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहे, आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे, तभी आप पिता की शोभा है, क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज अथवा सुख, पिता माता को छोड़ किससे माँगें? सो आप सर्व शक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देने वालों में पूर्ण हो॥ ३३॥

प्रार्थना विषय

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥ ३४॥

य० १७। १९॥

व्याख्यान—विश्व (सब जगत् में) जिसका चक्षु (दृष्टि) है,

(सर्वोत्कृष्ट) विद्यादि तेज [देहि] देओ [अग्ने] हे सर्व कामनाओं के पूरक परमात्मन्! [यत्] जो कुछ भी [मे] मेरे [तन्वाः] शरीर आदि में [ऊनम्] न्यूनता (निर्बलता) (है) [तत्] वह (सब कुछ) [मे] मेरे लिए [आपृण] (सुख और ऐश्वर्य के साथ) पूर्ण करो॥

३४. *शब्दार्थ*—(हे मनुष्यो! जो) [विश्वतश्चक्षुः] सब ससार का

जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं, तथा सर्वत्र मुख, बाहु, पग, अन्य श्रोत्रादि भी हैं। जिसकी दृष्टि में अर्थात् सर्वदृक् सर्ववक्ता सर्वाधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है, उसी से जब डरेगा तभी धर्मात्मा होगा अन्यथा कभी नहीं। वही विश्वकर्म्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है। पृथिवी से ले के स्वर्गपर्य्यन्त जगत् का कर्त्ता है। जिस जिस ने जैसा जैसा पाप वा पुण्य किया है, उस उस को न्यायकारी दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् "पतत्रैः" प्राप्त होने वाले सुख दुःख फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को "धमति" (धमन=कम्पन) यथायोग्य जन्म-मरणादि को प्राप्त करा रहा है। उसी निराकार अज अनन्त सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिये। वही याचनीय पूजनीय हमारा प्रभु स्वामी इष्टदेव है। उसी से सुख हमको होगा अन्य से कभी नहीं ॥ ३४ ॥

द्रष्टा (जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं) [उत्] और [विश्वतोमुखः] सर्ववक्ता अर्थात् सब ओर से (अन्तर्यामी) रूप का उपदेष्टा वा [विश्वतोबाहुः] सर्वधारक वा सब ओर से सब प्रकार अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त [उत्] तथा [विश्वतस्पात्] सर्वत्र पग वाला अर्थात सर्वगत वा सर्वव्यापक है—वही [एकः] एक ही असहाय अद्वितीय [देवः] स्वप्रकाशस्वरूप [द्यावाभूमी] सूर्य पृथिव्यादि लोकों को [जनयन्] सम्यक् उत्पन्न करता हुआ अर्थात् सम्यक् प्रकार से कार्यरूप प्रकट करता हुआ [बाहुभ्याम्] अनन्त बल व पराक्रम इन दोनों बाहुओं से [पतत्रैः] प्रापणीय सुखस्वरूप फलों के देने से [संधमति] सम्यक् (यथायोग्य) कम्पायमान अर्थात् जन्म मरणादि को प्राप्त करा रहा है ॥

स्तुति विषय

भूर्भुवः स्वः, सुप्रजाः प्रजाभिः
स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।
नर्यं प्रजां मे पाहि ।
शꣳस्य पशून्मे पाहि ।
अथर्यं पितुम्मे पांहि ॥ ३५ ॥

य० ३ । ३७ ॥

व्याख्यान—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर ! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो । "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचने वाले, "स्वः" सुखरूप हो, हमको सुख दीजिये । हे सर्वाध्यक्ष ! आप कृपा करो जिससे कि मैं पुत्र पौत्रादि उत्तम गुण वाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजा वाला

---

३५. *शब्दार्थ*—हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर ! आप [भूः] सदावर्तमान् (हो) [भुवः] वायु आदि पदार्थों के रचने वाले (हो) तथा [स्वः] सुखस्वरूप तथा सुखरूप लोक के रचने वाले (हो) । (आपकी कृपा से मैं) [प्रजाभिः] पुत्र पौत्रादि उत्तम प्रजा से [सुप्रजः] श्रेष्ठ प्रजा वाला [वीरैः] सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से [सुवीराः] उत्तम शूरवीरयुक्त (युद्ध में सदा विजयी) तथा [पोषैः] पुष्टिकारक उत्तम पदार्थों से [सुपोषः] श्रेष्ठ सर्वपुष्टि युक्त [स्याम्] होऊँ । [नर्यः] हे नरों के हितकारक ! [मे] मेरी [प्रजा] प्रजा की [पांहि] (सदा) रक्षा करो । [शंस्य] हे स्तुति के योग्य ईश्वर ! [मे] मेरे [पशून्] गौ अश्वादि पशुओं की [पाहि] रक्षा करो । [अथर्यं] हे व्यापकेश्वर ! मेरे [पितुम्] अन्न की [पाहि] रक्षा करो ॥

होऊं, सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी होऊं। हे महापुष्टिप्रद! आपके अनुग्रह से अत्यन्त विद्याओं तथा सोमलता आदि ओषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि सर्वपुष्टियुक्त होऊं। हे "नर्य" नरों के हितकारक! मेरी प्रजा की रक्षा आप करो। हे "शंस्य" स्तुति करने के योग्य ईश्वर! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो। हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर! "पितुम्" घरे अन्न की रक्षा कर। हे दयानिधे! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो ॥ ३५ ॥

प्रार्थना विषय

किंꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्य-
दध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ ३६ ॥

य० १७। २०॥

व्याख्यान—(प्रश्न) विद्या क्या है? वन और वृक्ष किसको

---

३६. *शब्दार्थ*— [किंस्वित्] क्या [वनम्] वन [उ] और [कः] क्या [वृक्षः] वृक्ष [असि] है [यतः] जिससे विश्वकर्मा ईश्वर ने [द्यावापृथिवी] सूर्य और भूमि आदि लोकों को [निष्टतक्षुः] भिन्न-भिन्न रचा है। [मनीषिणः] हे विद्वानों! [यत्] जो [भुवनानि] सब लोक लोकान्तरों को [धारयन्] धारण करता हुआ [अध्यतिष्ठत्] उन सब अर्थात् सर्व जगत् के ऊपर विराजमान (हो रहा है) [तत्-इत्] इसी [उ] प्रसिद्ध (ब्रह्म के विषय में) [मनसा] मन अथवा विज्ञान से विद्वानों से [पृच्छत] प्रश्न पूछो (तथा उसी का निश्चय करो) ॥

कहते हैं ? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेकविध रचना से अनेक पदार्थ रचता है वैसे ही स्वर्ग (सुखविशेष) और भूमि मध्य (सुख वाला लोक) तथा नरक (दुःख विशेष) और सब लोकों को रचा है उसी को वन और वृक्षादि कहते हैं। हे "मनीषिणः" विद्वानो ! जो सब भुवनों को धारण करके सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है, उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो। "मनसा" उसके विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है अन्यथा नहीं ॥ ३६ ॥

स्तुति विषय

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् !
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः
शतꣳशृणुयाम शरदः
शतं प्रब्रवाम शरदः ।
शतमदीनाः स्याम शरदः
शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ३७ ॥

य० ३६ । २४ ॥

व्याख्यान—वह ब्रह्म "चक्षुः" सर्वदृक् चेतन है तथा देव अर्थात्

३७. शब्दार्थ—[तत्] वह (ब्रह्म) [चक्षुः] सर्वद्रष्टा [देवहितम्] देव अर्थात् विद्वानों का हितकारी [शुक्रम्] शुद्धस्वरूप व शीघ्रकारी [पुरस्तात्] पूर्वकाल से अर्थात् सृष्टि से पहले (ही) [उत्चरत्] उत्कृष्टता से सर्वत्र व्यापक है। (उसी की कृपा से हम लोग) [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [पश्येम्] देखें, [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [जीवेम्]

विद्वानों के लिये वा मन आदि इन्द्रियों के लिये हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है। "पुरस्तात्" सबका आदि प्रथम कारण वही है। "शुक्रम्" सब का करने वाला किंवा शुद्धस्वरूप है। "उच्चरत्" प्रलयके ऊर्ध्व वही रहता है। उसी की कृपा से हम लोग शत (१००) वर्ष तक देखें, जीवें, सुनें, कहें कभी पराधीन न हों। अर्थात् ब्रह्मज्ञान बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहें। ऐसी कृपा आप करें कि कोई अंग मेरा निर्बल (क्षीण) और रोगयुक्त न हो तथा शत (१००) वर्ष से अधिक भी आप कृपा करें कि शत (१००) वर्ष के उपरान्त भी हम देखें, जीवें, सुनें, कहें, और स्वाधीन ही रहें ॥ ३७ ॥

प्रार्थना विषय

या ते धामानि परमाणि यावमा
या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः
स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ ३८ ॥

य० १७ । २१ ॥

व्याख्यान—हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! जो तुम्हारे

जीएँ, [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [शृणुयाम] (शास्त्रों के मङ्गल वचनों को) सुनें, [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [प्रब्रवाम] मङ्गल वचन कहें,]शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [अदीनाः] अदीन (अर्थात् किसी के पराधीन न) [स्याम] हों [च] तथा [शतात्] सौ [शरदः] वर्ष से (भी) [भूयः] अधिक (भीं देखें, जिएँ, सुनें, कहें तथा अदीन हों) ॥

३८. शब्दार्थ—[विश्वकर्मन्] हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर !

स्वरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ठ त्रिविधि धाम (लोक) हैं उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को कर। यथार्थविद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी हो रहें तथा इन लोकों के "हविषि" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों। हे "स्वधाव:" स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले! हमारे शारीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ाने वाले हैं। "यजस्व" हमारे लिये विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो। आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिये किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं। सर्वथा आपके अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते, परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं इससे हमको स्वकृपा से सुखी करें॥ ३८॥

स्तुति विषय

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो
वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥ ३९॥

य० ३६। २॥

व्याख्यान—हे सर्वसन्धायकेश्वर! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय

[या] जो [ते] आप के (स्वरचित) [परमाणि] उत्तम [या] जो [मध्यमा] मध्यम (वा) [या] जो [अवमा] कनिष्ठ [धामानि[लोक (हैं) [इमा] इन (सब लोकों की) [सखिभ्यः] (हम आप के) सखाओं को [शिक्ष] शिक्षा करो [उत] तथा [स्वधाव:] हे स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले! [तन्वम्] हमारे शरीरादि (पदार्थों) की [वृधान:] उन्नति (वृद्धि) करते हुए [हविषि] इन लोगों के देने लेने के व्यवहार में [स्वयम्] आप ही [यजस्व] सङ्गत वा चतुर करो॥

३९. *शब्दार्थ*—[यत्] जो [मे] मेरे [चक्षुषा] नेत्रों की

(प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय द्वेष, इनके छिद्र, निर्बलता, राग, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्मूल) करके सत्य धर्मादि में स्थापन आप ही करो, क्योंकि आप बृहस्पति (सब से बड़े) हो। सो अपनो बड़ाई की ओर देख के इस बड़े काम को आप अवश्य करें। जिससे हम लोग आप और आप की आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों। मेरे सब छिद्रों को आप ही ढाँकें। आप सब भुवनों के पति हैं इस लिये आप से बारम्बार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों। हे परमात्मन्! आपके बिना हमारा कल्याणकारक कोई नहीं है। हमको आपका ही सब प्रकार का भरोसा है, सो आप ही पूरा करेंगे ॥ ३९ ॥

प्रार्थना विषय

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया
धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति
यत्रा सप्तऽऋषीन् परऽएकमाहुः ॥ ४० ॥

य० १७। २६ ॥

व्याख्यान— हे सर्वज्ञ सर्वरचक ईश्वर! आप विश्वकर्मा (विविध-

[छिद्रम्] निर्बलता, मन्दत्वादि विकार, [हृदयस्य] हृदय [वा] और [मनसः] मन की [अतितृण्णम्] अत्यन्त व्याकुलता, राग, द्वेष, चाञ्चल्यादि विकार (हैं) [तत्] उन [मे] मेरे दोषों को [बृहस्पति] सबसे बड़ा परमात्मा (ब्रह्म) [दधातु] निवारण करे (छिद्रों को ढाँप दे) (और इन्द्रियों को) धर्मादि में स्थापन करे। [यः] जो [भुवनस्य] इन सब लोक लोकान्तरों (अर्थात् इस सारे संसार) का [पतिः] पालक स्वामीश्वर पति है (वह) [नः] हमारे लिए [शम्] कल्याणकारी [भवतु] होवे ॥

४०. शब्दार्थ—(जो परमात्मा) [विश्वकर्मा] विविध जगदुत्पादक,

जगदुत्पादक) है, तथा "विमनाः" विविध (अनन्त) विज्ञानवाले हैं, तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है। वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है। "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है। तथा "परम उत" सर्वोत्कृष्ट है। "सन्दृक्" यथावत् सब के पाप और पुण्यों को देखने वाला है। जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं, उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते, उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं औरों को नहीं। वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही रहते हैं। दुःख को नहीं प्राप्त होते। वह परमात्मा एक अद्वितीय है। जिस परमात्मा के सामर्थ्य में सप्त अर्थात् पंच प्राण, सूत्रात्मा और धनञ्जय ये सब प्रलयविषयक कारणभूत हो रहते हैं, वही जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप रहता है। उसी की उपासना करने से हम सदा सुख में रह सकते हैं ॥ ४० ॥

[विमना] विविध (अनन्त) ज्ञान विज्ञान वाला [आत्] तथा [विहाया] आकाशवत् सर्वत्र व्यापक वा निर्विकार, [धाता] सबका धारण करने वाला, [विधाता] विविध जगत् का उत्पादक, [परम] सर्वोत्कृष्ट [उत्] तथा [सन्दृक्] (यथावत् सबके पाप पुण्यों का) द्रष्टा (है)। (जो मनुष्य उस ईश्वर की भक्ति करते हैं) [तेषाम्] उनको ही [इष्टानि] इष्ट सुख (मिलते हैं और वे भक्त) [समिषा] सम्यक् स्वेच्छापूर्वक [मदन्ति] परमात्मा (परमानन्द) में ही (रहते हैं) [यत्र] जिस (ईश्वर) के सामर्थ्य में [सप्त-ऋषीन्] पंच प्राण सूत्रात्मा वा धनंजय यह सात (प्रलय में कारण भूत ही रहते हैं) उस [परः] परमात्मा को विद्वान् लोग [एक] एक अद्वितीय [आहुः] कहते हैं ॥

स्तुति विषय

चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः
स नो विश्वायुः सप्रथाः ।
स नः सर्वायुः सप्रथाः
अप द्वेषोऽअप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ।। ४१ ।।

य० ३८ । २० ।।

व्याख्यान—हे महावैद्य ! सर्वरोगनाशकेश्वर ! चार कोणे वाली नाभि (मर्मस्थान) ऋतु को भरी नैरोग्य और विज्ञान का घर "सप्रथाः" विस्तीर्ण सुखयुक्त आपकी कृपा से हों । तथा आपकी कृपा से "विश्वायुः" पूर्ण आयु हों । आप जैसे सर्वसामर्थ्य से विस्तीर्ण हो, वैसे ही विस्तृत सुख से विस्तार सहित सर्वायु हमको दीजिये । हे ईश ! हम "अपद्वेष" द्वेषरहित आपकी कृपा से तथा "अपह्वरः" चलन (कम्पन) रहित हों । आपकी आज्ञा और आप से भिन्न को

---

४१. *शब्दार्थ*—[सः] वह (विस्तीर्ण सामर्थ्य से युक्त, महावैद्य, सर्वरोगनाशकेश्वर) [चतुः स्रक्ति] चार कोने वाली [नाभिः] नाभि (मर्म स्थान) [ऋतस्य] ऋतु की (भरी नैरोग्य) [सप्रथाः] विस्तीर्ण (सुखयुक्त करे), (तथा) [नः] हमें [सप्रथाः] विस्तीर्ण सुखयुक्त [विश्वायुः] पूर्णायु वाला (करे) । [सः] वह परमात्मा [नः] हमें [सप्रथाः] विस्तीर्ण सुखयुक्त [सर्वायुः] समग्र आयु वाला (करे) (तथा हमें) [अपद्वेषः] द्वेष रहित (वा) [अपह्वरः] कुटिलता वा चञ्चलता रहित (करे) । [अन्यव्रतस्य] (उस ईश्वर के अतिरिक्त) किसी अन्य की उपासना का हमारा व्रत (न हो) । [सश्चिम] हम (सदा उसी को ही) सेवें ।

लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है इससे अन्य व्रत को कभी न मानें, किन्तु आपको "सश्विम" सदा सेवें। यही हमारा परमनिश्चय है इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें ॥ ४१ ॥

प्रार्थना विषय

यो नः पिता जनिता यो विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव
तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ४२ ॥

य० १७। २७॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो अपना पिता (नित्य पालन करनें वाला), जनिता (जनक) उत्पादक, "विधाता" सब मोक्षसुखादि कामों का विधायक (सिद्धिकर्त्ता), "विश्वा" सब भुवन लोकलोकान्तर धाम अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननें वाला, सब

---

४२. शब्दार्थ—(हे मनुष्यो!) [यः] जो [नः] हमारा [पिता] पालक [जनिता] (सब पदार्थों का) उत्पादक (तथा) [यः] जो [विधाता] (सब मोक्षादि सुखों का) सिद्धिकर्ता, [विश्वा] सब [भुवनानि] लोक लोकान्तर को (तथा) [धामानि] (सब) स्थिति के स्थानों को [वेद] जानना है। और [यः] जो [देवानाम्] दिव्य सूर्यादि लोक, इन्द्रिय तथा विद्वानों का [नामधा] नाम व्यवस्थादि करने वाला [एकः] एक (अद्वितीय) [एव] ही (है) [तम्] उसी के (विषय में) [सम्प्रश्नम्] सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में [अन्या] अन्य सब [भुवना] विद्वान् प्राणीमात्र वेदादिशास्त्र वा अन्य लोकस्थ पदार्थ [यन्ति] प्राप्त हो रहे हैं॥

जातमात्र भूतों में विद्यमान है। जो दिव्य सूर्यादिलोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करनेवाला एक अद्वितीय वही है अन्य कोई नहीं। वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है इसमें शंका नहीं रखनी। तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं। क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना। उसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं। इस से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के साहाय्य से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

स्तुति विषय

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्यतिरेकं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४३ ॥

य० ३४।१॥

व्याख्यान—हे धर्म्मनिरुपद्रव परमात्मन्! मेरा मन सदा

---

४३. *शब्दार्थ*—हे धर्म निरुपद्रव परमात्मन्! [यत्] जो [दैवम्] आत्मा का मुख्य साधक, [दूरङ्गमम्] दूर गगनशील अर्थात् दूर जाने का जिसका स्वभाव है, [ज्योतिषाम्] अग्नि, सूर्य, इन्द्रियाद्रि प्रकाशकों का (भी) [ज्योतिः] प्रकाशक अर्थात् जिसके बिना किसी पदार्थ का प्रकाश नहीं होता, [एकम्] एक असहाय, [जाग्रतः] जागते हुए (मनुष्य का) [दूरम्] दूर २

शिवसंकल्प धर्म कल्याण संकल्पकारी ही आपकी कृपा से हो कभी अधमकारी न हो। वह मन कैसा है ? कि जागते हुए पुरुष का दूर-दूर जाता आता है। दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है। अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योति प्रकाशकों का भी ज्योति-प्रकाशक है, अर्थात् मन के बिना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता। वह एक बड़ा चञ्चल वेगवाला मन आपकी कृपा से ही स्थिर, शुद्ध, धर्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है। "दैवम्" देव (आत्मा का) मुख्यसाधक, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकाल का ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है। उसको आप हमारे वश में यथावत् करें जिससे हम कुकर्म्म में कभी न फंसें, सदैव विद्या, धर्म्म और आप की सेवा में ही रहें ।। ४३ ।।

प्रार्थना विषय

न तं विदाथ य इमा
जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या
चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।। ४४ ।।

य० १७। ३१।

व्याख्यान—हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनाने

[उदैति] भागता है [उ] और [तत्] वह (ही) [सुप्तस्य] सोए हुए (पुरुष) का [तथैव] उसी प्रकार [एति] सुषुप्ति को प्राप्त होता वा विविध स्वप्न देखता है (दूर २ जाने के समान व्यवहार करता है) [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसंकल्पम्] कल्याणकारी तथा धर्मविषय संकल्पकारी [अस्तु] होवे ।।

४४. शब्दार्थ—हे जीवो ! [तम्] उस (ब्रह्म) को [न] (तुम)

वाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो। इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यन्त अविद्या से आवृत मिथयावाद नास्तिकत्व बकवाद करते हो, इससे दुःख ही तुमको मिलेगा सुख नहीं। तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राणपोषमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो। "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय भोगों के लिये ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहें हो और जिसने ये सब भुवन रचे हैं उस सर्वशक्तिमान न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो। अतएव उसको तुम नहीं जानते। (प्रश्न) वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग, ये दोनों एक हैं वा नहीं ? (उत्तर) "यद्युष्मा-कमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है। जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त नहीं है। इससे यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न हैं किञ्च व्याप्यव्यापक, आधाराधेय, सेव्यसेवकादि सम्बन्ध तो जीव के साथ ब्रह्म का है। इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ॥ ४४ ॥

नहीं [विदाथ] जानते हो [यः] जो [इमा] इन (सब भुवनों अर्थात् लोक लोकान्तरों के) [जजान] उत्पन्न करने वाला है। [युष्माकम्] तुम से (अथवा प्रकृति से) [अन्यत्] भिन्न (है)। (वह ब्रह्म) [अन्तरम्] (सबके भीतर स्थित होता भी) दूरस्थ की नयाईं [बभूव] है, (किन्तु तुम) [नीहारेण] अत्यन्त अविद्या (अज्ञान) से [आवृताः] ढके हुए [जल्प्या] मिथ्या जल्प वितण्डावाद (नास्तिकत्व बकवाद) करने वाले [असुतृपः] केवल अपने प्राण पोषण में ही प्रवृत्त (हो रहे हो) [च] और [उक्थशासः] योगाभ्यास को छोड़कर केवल शब्दार्थ खण्डन आदि में ही रत [चरन्ति] प्रवृत्त हो रहे हो (और उस सर्वशक्तिमान् न्यायकर्ता परब्रह्म से उल्टे ही चलते हो) ॥

स्तुति विषय

भग एव भगवाँ २।। ऽअस्तु देवा-
स्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति
स नो भग पुर एता भवेह ।। ४५ ।।

य० ३४ । ३८ ।।

व्याख्यान—हे सर्वाधिपते! महाराजेश्वर! आप भग परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान् हो। हे (देवाः) विद्वानो! "तेन" (भगवता प्रसन्नेश्वरसहायेन) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों। हे "भग" परमेश्वर सर्व संसार "तन्त्वा" उन आपको ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है? जो आपको प्राप्त होने की इच्छा न करे। सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हो फिर कभी हमसे आप और ऐश्वर्य अलग न हों। आप अपनी कृपा से इसी जन्म में

---

४५. *शब्दार्थ*—हे सर्वाधिपते, महाराजेश्वर! आप [भगः] परमैश्वर्यस्वरूप वा सर्वैश्वर्यप्रद होने से [एव] ही [भगवान्] भगवान् (सकलैश्वर्य सम्पन्न) [अस्तु] हो। [देवाः] हे विद्वानो! [वयम्] हम लोग [तेन] उस (भगवान् की कृपा, सहाय) से [भगवन्तः] सकलैश्वर्ययुक्त [स्याम] हों। [भग] हे परमेश्वर [सर्वः] सब संसार [तम्] उस [त्वा] आपको [इत] ही [जोहवीति] ग्रहण करने की अत्यन्त इच्छा करता है (अत्यन्त प्रशंसा करता व पुकारता) है। [भग] हे सकलैश्वर्यप्रद! [सः] सो आप [इह] इस संसार में [नः] हमारे [पुर एता] अग्रगामी (नेता) [भव] हूजिए।।

परमैश्वर्य्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें, परजन्म में तो कर्मानुसार फल होता भी है तथा आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहें ॥ ४५ ॥

प्रार्थना विषय

गणानां त्वा गणपतिᳬं हवामहे
प्रियाणां त्वा प्रियपतिᳬं हवामहे ।
निधीनां त्वा निधिपतिᳬं हवामहे वसो मम ।
आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ ४६ ॥

य० २३ । १९ ॥

व्याख्यान—हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब सब समूहों के पति होने से आपको गणपति नाम से ग्रहण करता हूं। तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हैं।

---

४६. *शब्दार्थ*—हे समूहाधिपते ! हमारे [गणानाम्] (जन इत्यादि) समूहों के [गणपतिम्] पति अर्थात् पालक (स्वामी) [त्वा] आपको (हम) [हवामहे] प्रीति से आह्वान करते हैं (अत्यन्त प्राप्ति की इच्छा करते हैं), [प्रियाणाम्] हमारे प्रिय पदार्थ वा जनों के [प्रियपतिम्] पति (पालक) [त्वा] आपको (हम) [हवामहे] आह्वान (प्रशंसा) करते हैं, [निधीनाम्] (हमारे) विद्यादि अन्न कोशों के [निधिपतिम्] पालक [त्वा] आपको (हम) [हवामहे] अत्यन्त प्रीति से आह्वान करते हैं, [वसो] हे सब जगत् व प्राणियों के वास कराने वाले (अर्थात् जिसमें यह सब वास करते हैं) [मम्] मेरे (न्यायाधीश व सुमित्र हूजिए)। [अहम्] मैं [गर्भधम्] गर्भ धारण करने वाले (अर्थात् प्रकृति आदि परमाणुओं को अपने अन्दर धारण करने वाले) (आप) को [आजानि] सम्यक (अच्छी प्रकार) जानूं। [त्वम्] आप [गर्भधम्] गर्भरूप प्रकृति को [आजासि] सम्यक् जानते हो वा अपने अन्दर धारण कर रहे हो ॥

इससे आप को प्रियपति मैं अवश्य जानूं। इसी प्रकार मेरी सब निधियों के पति होने से आपको मैं निश्चित निधिपति जानूं। हे "वसो" सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है, उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको ही मैं जानूं। सबका कारण आपका सामर्थ्य है। यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है। यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है, परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं। आप की कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेंकूं। तथा हम सब लोग आप की ही "हवामहे" अत्यन्त स्वर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं। सो आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी कभी ठिकाना न लगेगा ॥ ४६ ॥

प्रार्थना विषय

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ४७ ॥

य० १ । ५ ॥

व्याख्यान—हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य,

४७. *शब्दार्थ*—[व्रतपते] हे सत्यव्रतों के पालक (सत्यपति) ! [अग्ने] हे प्रकाशस्वरूप ईश्वर ! [व्रतम्] (अहिंसा, सत्य ब्रह्मचर्यादि) सत्यव्रतों का [चरिष्यामि] (मैं) आचरण (पालन) करूंगा (सो) [तत्] उस व्रत को (पालन करने में) [शकेयम्] समर्थ होऊं, [मे] मेरे [तत्] उस (सत्य धर्मानुष्ठानरूप व्रत) को [राध्यताम्] सम्यक् सिद्ध कीजिए। [अहम्] मैं [अनृतात्] असत्य अधर्म से पृथक् हुआ २ [इदम्] इस [सत्यम्] यथार्थ सत्य धर्म को [उपैमि] प्राप्त होता हूं ॥

गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूँगा। इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें। तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् हो के इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता, उस विद्यादि लक्षण धर्म को प्राप्त होता हूं। इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें, जिससे मैं सभ्य विद्वान् सत्याचरणी आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊं॥ ४७॥

स्तुति विषय

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४८॥

य० २५। १३॥

व्याख्यान—हे मनुष्यो! जो परमात्मा अपनें लोगों को

---

४८. शब्दार्थ—[यः] जो परमात्मा (अपनें लोगों को) [आत्मदा] आत्मज्ञान का दाता (तथा) [बलदा] (शरीर, इन्द्रिय, मन, आत्मा वा समाज के) बल का देने वाला (है), [यस्य] जिसकी [विश्वे] सब [देवः] विद्वान् लोग [उपासते] उपासना करते हैं (वा) [प्रशिषम्] अनुशासन व शिक्षा को (मानते) हैं, [यस्य] जिसका [छाया] आश्रय (ही) [अमृतम्] मोक्ष-सुखदायक (है), [यस्य] जिसका (अनाश्रय अकृपा दुष्टजनों के लिए) [मृत्युः] (बार २) मरणजन्मरूप (महाक्लेशदायक है)। (हे सज्जन मित्रो! आओ सब मिलके) [कस्मै] उस सुखस्वरूप [देवाय] ज्ञानस्वरूप वा सकल ज्ञानदाता परमात्मा के लिए [हविषा] आत्मा व अन्तःकरण अर्थात् अत्यन्त प्रेम से [विधेम] भक्ति करें॥

"आत्मदा" आत्मा का देने वाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है, जीवप्राणदाता तथा "बलदा:" त्रिविध बल-एक मानस विज्ञानबल, द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता तेजोवृद्धि, तृतीय शरीरबल महापुष्टि दृढ़ाङ्गता और वीर्यादिवृद्धि इन तीनों बलों का जो दाता है, जिसके "प्रशिषम" अनुशासन (शिक्षा मर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं, सब प्राणी और अप्राणी जड़ चेतन विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसे कि कान से सुनना, आँख से देखना इसको उलटा कोई नहीं कर सकता है। जिसकी "छाया" आश्रय ही अमृत विज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है। तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्ट जनों के लिये बारम्बार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है। हे सज्जन मित्रों! वही एक परम सुखदायक पिता है। आओ हम सब मिलके प्रेम, विश्वास और भक्ति करें। कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानें। वह अपने को अत्यन्त सुख देगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ।। ४८ ।।

स्तुति विषय

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः ।
अथोऽअन्नस्य कीलाल ऊपहूतो गृहेषु नः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये
शिवꣳ शग्मꣳ शंयोः शंयोः ।। ४९ ।।

य० ३ । ४३ ।।

व्याख्यान—हे पश्वादिपते! महात्मन्! आप की ही कृपा से

---

४९. *शब्दार्थ*—हे परमेश्वर [इह] इन [नः] हमारे [गृहेषु] घरों में [गावः] गायादि उत्तम पशु [उपहूताः] (समीप) प्राप्त हों,

उत्तम गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक पशु और अन्न सर्व रोगनाशक औषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख। जिससे किसी पदार्थ के बिना हमको दुःख न हो। हे विद्वानों! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे संग और ईश्वर की कृपा से क्षेम कुशलता और शांति तथा सर्वोपद्रव विनाश के लिए "शिवम्" मोक्षसुख "शग्मम्" और इस संसार के सुख को मैं यथावत् प्राप्त होऊं। मोक्ष सुख और प्रजा सुख इन दोनों की कामना करने वाला जो मैं हूं उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये। आपका यह स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना ।। ४९ ।।

प्रार्थना विषय

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं
धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।। ५० ।।

य० २५ । १८ ।।

व्याख्यान—हे सुख और मोक्ष की इच्छा करने वाले जनो! उस

[अजावयः] भेड़ बकरी आदि पशु (भी) [उपहूताः] समीपस्थ (सम्यक् प्राप्त हों) [अथो] तथा [अन्नस्य] अन्नादि भोज्य पदार्थ [कीलालः] (वा) सर्वरोगनाशक औषधियों के उत्तम रस [उपहूतः] सम्यक् प्राप्त हों। हे विद्वानो! [वः] तुम्हारे सङ्ग (वा ईश्वर की कृपा से) [शान्त्यै] सुख वा शान्ति के लिए, [क्षेमाय] क्षेम कुशलता के लिए [शंयोः २] सुख के साधनों से [शिवम्] मोक्षसुख (वा) [शग्मम्] सांसारिक सुख को [प्रपद्ये] मैं प्राप्त होऊँ ।।

५०. शब्दार्थ—(हे सुख वा मोक्ष की इच्छा करने वालो जीवो!)

परमात्मा को ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिए अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे। क्योंकि वह ईशान (सब जगत का स्वामी) है। और ईशन (उत्पादन) करने की इच्छा करनें वाला है। दो प्रकार का जगत् है अर्थात् चर और अचर। इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करने वाला वही है। "धियञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है। उसकी "अवसे" अपनी रक्षा के लिए हम स्पर्द्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं। जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिए पोषणप्रद है, वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानों की वृद्धि का "रक्षिता" रक्षक है। तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिए हमारा 'पायुः" पालक वही है और "अदब्धः" हिंसा रहित है। इसलिये ईश्वर जो निराकार सर्वदानन्दप्रद है, हे मनुष्यो! उसको मत भूलो। बिना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है॥ ५०॥

[वयम्] हम [अवसे] अपनी रक्षादि के लिए [तम्] उस [ईशानम्] सब जगत् के कर्ता (वा स्वामी) [जगतः] चर वा [तस्थुषः] अचर जगत् [पतिम्] के पति (पालक) [धियम्–जिन्वम्] बुद्धि के तृप्तिकारक विज्ञान-प्रद का [हूमहे] अत्यन्त स्पर्धा से (इच्छा से) आह्वान (स्तुति) करते हैं। [यथा] जैसे [सः] वह [नः] हमारे [वेदसाम्] धन (वा विज्ञानों) की [वृधे] वृद्धि के लिए [पूषा] पुष्टिकर्ता (पोषणकर्ता) (वा) [रक्षिता] रक्षक (है वैसे ही) [स्वस्तये] निरुपदवता (सर्वसुख) के लिए [पायुः] सबका पालक [अदब्धः] हिंसा रहित [असत्] होवे॥

स्तुति विषय

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान्
रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः
सत्या नः सन्त्वाशिषः ।। ५१ ।।

य० २ । १० ।।

व्याख्यान—हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! "मयि" मुझमें विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय, "रायः" और उत्तम धन को "मघवानः" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः प्राप्त करो । हे सर्वकाम पूर्ण करने वाले ईश्वर ! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये (पुनरुक्ति अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है) । हे भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिये । हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहैं ।। ५१ ।।

---

५१. *शब्दार्थ*—[इन्द्रः] परमैश्वर्यवान् परमात्मा [मयि] मुझ में [इदम्] यह (प्रत्यक्ष) [इन्द्रियम्] उत्तम श्रोत्रादि इन्द्रिय वा मन विज्ञानादि को [दधातु] धारण कराए (तथा) [मघवानः] परमधनवान् प्रभु [अस्मान्] हमें [रायः] उत्तम धन [सचन्ताम्] (शीघ्र) प्राप्त कराए । (तथा इसी प्रकार) [अस्माकम्] हमारी [आशिषः] कामनाएँ [सत्याः] सत्य (शुद्ध) [सन्तु] हों (ऐसे ही) [नः] हमारी [आशिषः] न्यायेच्छा विशिष्ट क्रियाएँ [सत्याः] सत्य (ही) [सन्तु] हों ।।

प्रार्थना विषय

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा ।। ५२ ।।

य० ३२ । १३ ।।

व्याख्यान—हे सभापते ! विद्यामय न्यायकारिन् सभासद् ! सभाप्रिय सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो। ऐसी इच्छा वाले आप हमको कीजिये। किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न मानें किन्तु आपको ही हम सभापति, सभाध्यक्ष, राजा मानें। आप अद्भुत, आश्चर्य, विचित्र शक्तिमय हैं तथा प्रियस्वरूप ही हैं। इन्द्र जो जीव उसके कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं। "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी जीवों के आप ही हैं। "मेधा" अर्थात् विद्या सत्यधर्मादि धारणा वाली बुद्धि को हे भगवन् ! मैं याचता हूं। सो आप कृपा करके मुझको देओ। "स्वाहा" यही स्वकीया वाक् "आह" कहती है कि एक ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है। यही वेद में ईश्वराज्ञा है सो सब मनुष्यों को मानना योग्य है ।। ५२ ।।

---

५२. *शब्दार्थ*—[सदसस्पतिम्] सभापति न्यायकारी, [अद्भुतम्] अद्भुत विचित्र शक्तिमय, [इन्द्रस्य] इन्द्रियों के स्वामी अर्थात् जीवात्मा के [काम्यम्] कमनीय (कामना के योग्य), [प्रियम्] प्रिय स्वरूप (प्रसन्नता करने वाले), [सनिम्] सम्यक् भजनीय वा सेव्य की (उपासना से) [मेधाम्] विद्या धर्मादि धारणा वाली बुद्धि को (हम लोग) [अयासिषम्] प्राप्त होवें। [स्वाहा] (यही) स्वकीयवाक् कहती हैं (कि ईश्वर से भिन्न कोई जीवों का उपास्य अथवा सेव्य नहीं) ।।

स्तुति विषय

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने
मेधाविनं कुरु स्वाहा ।। ५३ ।। य० ३२ । १४ ।।

व्याख्यान—हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन् ! जिस विज्ञानवती यथार्थ-धारणा वाली बुद्धि को देव (विद्वानों) के वृन्द उपासते (धारण करते) हैं। तथा यथार्थ पदार्थ विज्ञान वाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझको मेधावी कर। "स्वाहा" इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये, जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो ।। ५३ ।।

प्रार्थना विषय

मेधां मे वरुणो ददातु
मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च
मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ।। ५४ ।।
य० ३२ । १५ ।।

व्याख्यान—हे सर्वोत्कृष्टेश्वर ! आप "वरुणः" वर (वरणीय)

---

५३. *शब्दार्थ*—[अग्ने] हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! [देवगणाः] विद्वानों के वृन्द (समूह) [च] वा [पितरः] यथार्थ पदार्थविज्ञान वाले बुद्धिमान् [याम्] जिस [मेधाम्[धारणा वाली बुद्धि के [उपासते] उपाश्रित होते हैं अर्थात् धारण करते हैं [तया] उस [मेधया] धारणा वाली बुद्धि के साथ [माम्] मुझको [अद्य] आज (इसी समय) [मेधाविनम्] मेधावी [कुरु] करो। [स्वाहा] (यह) मेरी (आप से) हार्दिक पुकार है ।।

५४. *शब्दार्थ*—[वरुणः] सर्वश्रेष्ठ वरणीय परमात्मा [मे] मुझे

आनन्दरूप हो। कृपा से मुझको मेधा सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि दीजिये। तथा "अग्निः" विज्ञानमय विज्ञानप्रद, "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता पालक, "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान्, "वायुः" विज्ञानवान् अनन्तबल, "धाता" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करने वाले आप मुझको अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये* ॥ ५४ ॥

स्तुति विषय

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं
चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रिय-
मुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ ५५ ॥

य० ३२ । १६ ॥

व्याख्यान—हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर ! मेरा ब्रह्म (विद्वान्)

---

*अनेक बार माँगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीति द्योतनार्थं सद्यः दानार्थ है। बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है। उसके होने से जीव को सब सुख होते हैं। इस हेतु बारम्बार परमात्मा से बुद्धि की ही याचना करनी श्रेष्ठ बात है॥

[मेधाम्] सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि [ददातु] देवे। [अग्निः] ज्ञानस्वरूप, विज्ञानमय, विज्ञानप्रद [प्रजापति] (व) सब प्रजा (संसार) का पालक [मे] मुझे [मेधाम्] अत्युत्तम मेधा बुद्धि [ददातु] देवे। [इन्द्रः] परमैश्वर्यवान् [च] वा [वायुः] अनन्त बलवान् [च] वा [धाता] सब जगत् को धारण करने वाला परमात्मा [मे] मुझे [मेधाम्] सर्वोत्तम मेधाबुद्धि [ददातु] देवे। [स्वाहा] (यही) मेरी हार्दिक याचना है॥

५५. *शब्दार्थ*—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से [मे] मेरा

और क्षत्र (राजा, राज्य, महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों। "श्रियम्" सर्वोत्तम विद्यादिलक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों। हे "देवाः" विद्वानो! दिव्य ईश्वर गुण परमकृपा आदि उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझमें अचलता से धारण कराओ। उसको मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूं और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व संसार के हित के लिए तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिये व्यय करूं ॥ ५५ ॥

इति
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुत
विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां शिष्येण
दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचित
आर्याभिविनये द्वितीयः प्रकाशः
सम्पूर्णः ॥

समाप्तश्चायङ्ग्रन्थः ॥

[इदम्] यह [ब्रह्म] वेद वा आप ईश्वर के ज्ञाता विद्वान् [च] वा [क्षत्रम्] शूरवीर न्यायकारी क्षत्रिय लोग [च] और (यह) [उभे] दोनों [श्रियम्] सर्वोत्तम महाराज्य श्री को [अश्नुताम्] भोगें (प्राप्त हों) जैसे [देवाः] विद्वान लोग [मयि] मुझ में [उत्तमाम्] उत्तम (विद्यादिलक्षण से युक्त) [श्रियम्] लक्ष्मी को [दधातु] अचलता से धारण करायें, (हे जिज्ञासुओं!) [तस्मै] उसी (श्री की प्राप्ति) के लिए [ते] आप के लिए (भी हम प्रयत्न करते रहें)। [स्वाहा] यही परमात्मा से हमारी हार्दिक याचना है॥

परिशिष्ट १

ब्रह्म यज्ञ (संध्या)

जिस में भली प्रकार ईश्वर का ध्यान किया जाये उसे 'संध्या' कहते हैं। सो रात वा दिन के संयोग समय दोनों संध्याओं में (प्रातः वा सांय) सब मनुष्यों को ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना वा उपासना अवश्य करनी जाहिये।

संध्या के लिये सब से पहले बाहर (अपना शरीर वा स्थान) वा भीतर (अन्तःकरण) दोनों की शुद्धि करनी चाहिये। बाहर की शुद्धि जलादि से वा भीतर की शुद्धि रागद्वेष आदि के त्याग से करनी चाहिये। परन्तु शरीर शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि अधिक आवश्यक है और यही सर्वोत्तम वा परमेश्वर प्राप्ति का एक साधन है।

फिर न्यून से न्यून तीन प्राणायाम इस प्रकार करें :—

भीतर के वायु को बलपूर्वक दोनों नासिकापुटों से बाहर निकाल कर यथाशक्ति बाहर ही रोक देवें। फिर शनैः २ वायु को भीतर लेकर और उसे कुछ देर (यथाशक्ति) अन्दर रोक कर बाहर (बलपूर्वक) निकाल देवें और वहां फिर कुछ (यथाशक्ति) रोके। इस को न्यून से न्यून तीन बार करें। इस से आत्मा वा मन स्थिर हो जाते हैं।

(प्राणायाम के पश्चात गायत्रीमन्त्र के पाठ से शिखा अर्थात् बालों को वान्ध कर रक्षा करे। यदि बाल बहुत बड़े न हों और पतन न हों अर्थात् इधर उधर अथवा मुंह पर न गिरे तो न करे)

आचमन मन्त्र

ओं शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ।।

यजु० ३६ । १२ ।।

शब्दार्थ—[देवी] दिव्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, सर्वप्रकाशक, प्रकाशस्वरूप, सर्वदानन्दप्रद वा आनन्दस्वरूप [आपः] सर्वव्यापक (ईश्वर) [अभिष्टये] मनोवाञ्छित आनन्द (की प्राप्ति) के लिये वा [पीतये] पूर्णानन्द भोग से तृप्ति के लिये (अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिये) [नः] हमारे लिये [शम्] कल्याणकारी [भवन्तु] होवे। (और वह परमेश्वर) [नः] हमारे लिये [शंयोः] कल्याण (सुख) की [अभिस्रन्तु] (सर्वदा) सब ओर से वृष्टि करे ।।

(इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन आचमन करे। इस से कण्ठ के कफ़ादि की निवृत्ति होती है। यदि जल न हो तो आचमन न करें परन्तु संध्या का त्याग न करें) ।।

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्र

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कंठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकरपृष्ठे ।।

शब्दार्थ—[ओ३म्] परमेश्वर [वाक् वाक्] हमारी वाणी को

(बलवान् करे अर्थात् हमारे बोलने की शक्ति सदा ठीक बनी रहे और हमारी वानी ज्ञान विज्ञानयुक्त हो तथा सत्य के प्रकाश करने में कभी पीछे न हटे)। [ओ३म्] परमेश्वर [प्राणः २] (हमारे) प्राण (जीवन शक्ति) (बलवान् करे अर्थात् हम दीर्घायु हों)। [ओ३म्) परमेश्वर [चक्षुः २] हमारे चक्षु (बलवान करे अर्थात् हमारे देखने की शक्ति सदा ठीक रक्खे)। [ओ३म्] परमेश्वर [श्रोत्रम् २] हमारे क्षोत्र (कान) (बलवान् करे अर्थात् हमारी सुनने की शक्ति सदा ठीक बनी रहे)। [ओ३म्] परमेश्वर [नाभिः] हमारी नाभि (बलवान् करे अर्थात् हमारे में नपुसंकता वा बांझपन न हो)। [ओ३म्] परमेश्वर [हृदयम्] हमारे हृदय को (बलवान् करे अर्थात् हमें कभी हृदयरोग न हो और न हमें हृदय की कभी दुर्बलता हो)। [ओ३म्] परमेश्वर [कण्ठः] हमारे कण्ठ को (बलवान् करे अर्थात् हमारे कण्ठ सदा रोगरहित हों और उच्चस्वर से हम वेदगायन कर सकें)। [ओ३म्] परमात्मा [शिरः] हमारे शिर (मस्तिक) को (बलवान् करे अर्थात् हमारे शिर में कभी कोई रोग न हो और हमारी बुद्धि निर्मल वा बलवान् हो)। [ओ३म्] परमात्मा [बाहुभ्याम्] हमारी दोनों भुजाओं में [यशः] यश (वा) [बलम्] बल (प्राप्त कराये अर्थात् हमारी भुजाओं में बल देवे और हम उन से ऐसा कार्य करें जो कि निन्दनीय न हो किन्तु यश वा शोभा देने वाला हो)। [ओ३म्] परमेश्वर [करतल] हमारे हाथ की हथेली (वा) [करपृष्ठे] हमारे हाथ की पृष्ठ में (बल देवे अर्थात् हमारे हाथ सम्पूर्णतया पुष्ट हों जिससे हम सब कार्य ठीक कर सकें और हम दानशील हों)।।

(इस मन्त्र से प्रार्थना करते समय इन्द्रियों का स्पर्श करता जाये)।।

मार्जन मन्त्र

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

शब्दार्थ—[ओ३म्] परमेश्वर [भूः] (जो हमारा) प्राणप्रिय वा प्राणाधार (है) [शिरसि] (हमारे) शिर (मस्तिष्क) को [पुनातु] पवित्र करे (अर्थात् इससे हम सदा अच्छी २ बातें विचारें जो किसी की हानि करने वाली न हों)। [ओ३म्] परमेश्वर [भुवः] (जो हमारे) सब दुःखों का दूर करने वाला (है) [नेत्रयोः] (हमारे) नेत्रों (आँखों) को [पुनातु] पवित्र करे (अर्थात् इन से हम कभी किसी को बुरी दृष्टि से न देखें)। [ओ३म्] परमेश्वर [स्वः] (जो) सर्वव्यापक वा सुखस्वरूप (है) [कण्ठे] (हमारे) कण्ठ को [पुनातु[पवित्र करे (अर्थात् हम कोई बुरा वचन न बोलें अथवा गन्दे गीत न गाएँ)। [ओ३म्] परमेश्वर [महः] (जो) सबसे महान और सबका पूज्य (है) [हृदये] (हमारे) हृदय को [पुनातु] पवित्र करे (अर्थात् इसमें कभी बुरी भावना उत्पन्न न हो)। [ओ३म्] परमेश्वर [जनः] (जा) सब संसार का उत्पन्न-कर्त्ता (है) [नाभ्याम्] (हमारी) नाभी (जननशक्ति) को [पुनातु] पवित्र करे (अर्थात् हम कभी व्यभचारी अथवा विषयासक्त न हों)। [ओ३म्] परमेश्वर [तपः] (जो) कि ज्ञानमय अर्थात् ज्ञानस्वरूप वा दुष्टों का सन्तापकारी (है) [पादयो] (हमारे) पाओं (वा जङ्घाओं) को [पुनातु] पवित्र करे (अर्थात् इन द्वारा हम सदा परोपकार का कार्य ही करें)। [ओ३म] परमेश्वर [सत्यम्] (जो)

सदा अविनाशी (है) [शिरसि] हमारे शिर (मस्तिष्क) को [पुनः] फिर (अर्थात् शिर के लिए बारम्बार प्रार्थना है कि) [पुनातु] पवित्र करे (अर्थात् सदा हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग पर चलाये)। [ओ३म्] परमेश्वर [खम्[(जो) आकाशवत् सर्वत्र व्यापक (वा) [ब्रह्म] सबसे महान वा सर्वव्यापक (है) [सर्वत्र] सब जगह सब ओर से हमारे सब अङ्गों को [पुनातु] पवित्र करे (जिस से हम सदा निष्पाप होकर धर्म, अर्थ, काम वा मोक्ष की सिद्धि कर सकें)॥

(इस प्रकार ईश्वर के विविध नामों अर्थात् गुणों के स्मरण द्वारा प्रार्थना कर मार्जन करें अर्थात् अपने आपको शुद्ध वा पवित्र करने का संकल्प करें वा उसके लिए ईश्वर की सहायता चाहें)॥

प्राणायाम मन्त्र

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः।
ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥

तैत्ति १०।७१॥

शब्दार्थ— [ओ३म्] परमेश्वर [भूः] सबका प्राणप्रिय वा प्राणाधार (है)। [ओ३म्] परमेश्वर [भुवः] सब दुःखों का नाश करने वाला (है)। [ओ३म्] परमेश्वर [स्वः] सुखस्वरूप वा सर्वत्रव्यापक (है)। [ओ३म्] परमेश्वर [महः] सबसे महान् वा सर्वपूज्य (है)। [ओ३म्] परमेश्वर [जनः] (समस्त संसार व सब जीवों के शरीरों की) रचना करने वाला (है)। [ओ३म्] परमेश्वर [तपः] ज्ञानस्वरूप व दुष्टों का सन्तापकारी (है)।

[ओ३म्] परमेश्वर [सत्यम्] सदा अविनाशी (है) ॥

(इस मन्त्र का अर्थपूर्वक विचार करते हुए उक्त रीति से प्राणायामों को करे) ॥

अघमर्षण मन्त्र

ओं ऋतं च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥

ऋ० ८ । ८ । ४८ । १ ॥

१. *शब्दार्थ*—(परमेश्वर के अपने) [अभीद्धात्] सब ओर से प्रकाशित ज्ञानमय [तपसः] अनन्त सामर्थ्य से [ऋतम्] (सब विद्याओं का मूल) वेद शास्त्र (प्रकाशित हुआ) (तथा) [सत्यम्] (स्थूल वा सूक्ष्म जगत् का कारण) प्रकृति [अध्यजायत्] उत्पन्न हुई (अर्थात् कारणरूप से कार्यरूप हुई) । [तत्] उसी (परमेश्वर के अनन्त सामर्थ्य) से [रात्री] प्रलयरूप रात्री (जब प्रलय होता है तो सब संसार अन्धकाररूप ही होता है क्योंकि सूर्य इत्यादि लोक उस समय नहीं रहते) [अजायत] उत्पन्न हुई। [ततः] उस (परमेश्वर के अनन्त सामर्थ्य) से [अर्णवः] जलमय [समुद्रः] (पृथिवी वा आकाश में मेघमण्डलरूप) महा समुद्र (उत्पन्न हुआ) ॥

ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥

ऋ० ८ । ८ । ४८ । २ ॥

२. शब्दार्थ—[विश्वस्य] (उसी) सब जगत् के (को) [वशी]

वश में रखने वाले (परमेश्वर ने) [मिषतः] (अपने) सहज स्वभाव से [अर्णवात्] जलमय [समुद्रात्] समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् [संवत्सरः] क्षण, मुहूर्त, प्रहरादि काल [अध्यजायत्] उत्पन्न किया (और उसी परमेश्वर नें अपने अनन्त सामर्थ्य से) [अहोरात्राणि] रात व दिन (का भी काल विभाग यथोचित किया) ।।

ओं सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।। ३ ।।

ऋ० ८ । ८ । ४८ । ३ ।।

३. *शब्दार्थ*—[धाता] सब जगत् के धारण करने वाले (ईश्वर) ने [यथापूर्वम्] पहले की न्याईं (अर्थात् पूर्व कल्पों के समान क्योंकि उसका ज्ञान एकरस अनन्त वा पूर्ण है) [सूर्यचन्द्रमसौ] सूर्य वा चन्द्रलोक [दिवम्] अकाशमय द्युलोक व अग्नि को [च] वा [पृथिवीम्] भूमि को [च] वा [अन्तरिक्षम्] आकाश (वा) [अथ] फिर [स्वः] आकाशस्थ मध्यस्थ लोक को [अकल्पयत्] रचा ।।

(इन मन्त्रों से परमेश्वर का स्मरण करके उससे डर के पाप को सर्वथा त्याग देवे। इस लिए इनको अघमर्षण मन्त्र, अर्थात् पाप त्याग वाले मन्त्र कहते हैं)

पश्चात् शन्नो देवी वाले प्रथम मन्त्र से फिर जल से आचमन करे अथवा न आवश्यकता समझे तो केवल मन्त्र ही पढ़ लेवे और आचमन न करें। तदन्तर गायत्री मन्त्र का पाठ अर्थ सहित विचार करके करे और ईश्वर के महान् उपकारमय कार्यों का चिन्तन करके आगे के मन्त्रों से उसकी प्रार्थना करे ।।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः। तेभ्यों नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विषमस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥

अथर्व० ३।३७।१॥

१. शब्दार्थ—(वह पमेश्वर) [प्राची] पूर्व अथवा जिधर अपना मुख हो [दिक्[दिशा (का) [अधिपति] स्वामी, [अग्नि] ज्ञानस्वरूप वा प्रकाशस्वरूप, [असितः] बन्धन रहित अर्थात् नित्य मुक्तस्वभाव [रक्षिता] (वा) हमारा रक्षक (है) (जिसके) [इषवः] बाण (जिनके द्वारा वह संसार की रक्षा करता है) [अदित्याः] सूर्य की किरणें वा प्राण (हैं)। [तेभ्य] उन (प्राणों वा किरणों) के लिए [नमः] हमारा नमस्कार (अर्थात् आदर) हो, [अधिपतिभ्यः] (उन इन्द्रियों के) स्वामी (प्राणों) को [नमः] हमारा नमस्कार (अर्थात् आदर) हो, (तथा) [रक्षत्रिभ्यः] (शरीर की) रक्षा करने वाले (प्राणों वा किरणों) को [नमः] हमारा नमस्कार (अर्थात् आदर) हो (तथा) [इषुभ्यः] (रक्षा करने वाले प्राणरूपी) बाणों को [नमः] हमारा नमस्कार (अर्थात् आदर) हो (वा) [एभ्यः] इन प्राणों (वा किरणों) को हमारा (बारम्बार नमस्कार अर्थात् आदर) [अस्तु] हो, (इस लिए कि) [यः] जो प्राणी (अज्ञान से). [अस्मान्] हमको (से) [द्वेष्टि] द्वेष करता है (तथा) [यम्] जिस प्राणी का [वयम्] हम (अज्ञान से) [द्विष्मः] द्वेष करते हैं [तम्] उस (प्राणी) को

(हम) [वः] आप (ईश्वर) के [जम्भे] वश में [दध्मः] दग्ध करते हैं (जिससे वह वैर को त्याग कर हमारा मित्र हो जावे वा हम भी उसके मित्र हो जावें अर्थात् हम सब परस्पर मित्र भाव से वर्त्तें) ॥

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ २ ॥

अथर्व ३ । २७ । २ ॥

२. *शब्दार्थ*— (वह परमेश्वर) [दक्षिणा] दक्षिण (अथवा हमारी दहिनी ओर) [दिक्] दिशा का [इन्द्रः] ऐश्वर्यस्वरूप [अधिपतिः] स्वामी (है) (वह) [तिरश्चिराजी] तिर्य्यक् (अर्थात् कीट, सर्प, बिच्छु इत्यादि) की राजी (पंक्ति अर्थात् समूहों) से [रक्षिता] हमारी रक्षा करने वाला (है), (जिसके) [इषवः] रक्षारूपी बाण (अर्थात् जिनके द्वारा वह हमारी रक्षा करता है) [पितरः] ज्ञानी लोग (हैं)। [तेभ्यः] उन (ज्ञानी लोगों) को [नमः] हमारा नमस्कार (अर्थात् आदर) हो, [अधिपतिभ्यः] उन मनुष्यों के अधिपतियों (पितरों) को [नमः] हमारा नमस्कार हो, [रक्षितृभ्यः] रक्षा करने वाले (पितरों) के लिए [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो। [इषुभ्यः] (उन रक्षा करने वाले पितररूपी) बाणों को [नमः] हमारा नमस्कार हो (वा) [एभ्यः] इन (पितरों) को [अस्तु] (बारम्बार हमारा नमस्कार) हो।

[यः] जो प्राणी (अज्ञानवश) (अस्मान्) हमको (से) [द्वेष्टि] द्वेष करता है, (वा) [यम्] जिस प्राणी से [वयम्] हम (अज्ञानवश) [द्विष्मः] द्वेष करते हैं [तम्] उसको [वः] (हम) आप (ईश्वर) के [जम्भे] वश में [दध्मः] दग्ध करते हैं (जिससे वह वैर को त्याग कर हमारा मित्र हो जावे वा हम भी उसके मित्र हो जावें) ॥

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्वौ नम एभ्यो अस्तु । यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

अथर्व० ३ । २७ । ३ ॥

३. *शब्दार्थ*— (वह परमेश्वर) [प्रतीची] पश्चिम (अथवा अपने पृष्ट ओर) [दिक्] दिशा का [वरुणः] सकसे श्रेष्ठ (सर्वोत्तम) [अधिपतिः] स्वामी है (जो) [पृदाकू] बड़े बड़े अजगर सर्पादि से [रक्षिता] (हमारी) रक्षा करने वाला (है) (वा जिसके) [इषवः] रक्षारूपी बाण [अन्नम्] अन्न (अर्थात् सब खाद्य पदार्थ हैं) । [तेभ्य] उन अन्नादि को हमारा [नमः] नमस्कार (अर्थात् उनके प्रति हमारा आदर) हो, [अधिपतिभ्यः] उन प्राणों के स्वामी अन्नादि को [नमः] नमस्कार (आदर) हो । [रक्षितृभ्यः] रक्षा करने वाले (अन्नादि खाद्य पदार्थों) के लिए [नमः) हमारा नमस्कार (अर्थात् आदर) हो, [इषुभ्यः] (रक्षा करने वाले अन्नरूपी) बाणों के लिए [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो (वा) [एभ्यः] इन (अन्नादि प्राणों के रक्षकों) को [अस्तु] (हमारा बारम्बार नमस्कार (आदर) हो। [यः] जो

प्राणी (अज्ञानवश) [अस्मान्] हमारे साथ [द्वेष्टि] द्वेष करता है (वा) [यम्] जिस प्राणी से [वयम्] हम (अज्ञानवश) [द्विष्मः] द्वेष करते हैं [तम्] उसको हम [वः] आप (ईश्वर) के [जम्भे] वश में [दध्मः] दग्ध करते हैं (जससे वह वैर त्याग कर हमारा मित्र हो जावे और हम भी उससे वैर त्याग उसके मित्र हो जावें) ॥

ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिःस्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधितिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥

अथर्व० ३ । २७ । ४ ॥

४. *शब्दार्थ*—(वह परमेश्वर) [उदीची] उत्तर (अथवा बांई ओर) [दिक्] दिशा का [सोमः] सर्वजगदुत्पादक [स्वजः] अजन्मा (स्वयम्भू अनादि) [रक्षिता] हमारी रक्षा करने वाला [अधिपति] स्वामी (है) (जिसके) [इषवः] रक्षारूपी बाण (जिनके द्वारा वह हमारी रक्षा करता है) [अशनिः] विद्युत (बिजली) (हैं जिससे हम बहुत उपयोग ले सकते हैं) । [तेभ्यः] उन (विद्युतादि को हमारा) [नमः] नमस्कार (आदर) हो, [अधिपतिभ्यः] (सब शक्तियों के) स्वामी (विद्युत) को [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो, [रक्षितृभ्यः] (हमारे) रक्षकों (विद्युतादि शक्तियों) को [नमः] नमस्कार (आदर) हो, [इषुभ्यः] (रक्षा करने वाले विद्युतरूपी) बाणों के लिए [नमः] (हमारा) नमस्कार (आदर)

हो (वा) [एभ्यः] इन (विद्युतादि शक्तियों) को [अस्तु] (हमारा बारम्बार नमस्कार आदर) हो। [यः] जो प्राणी (अज्ञानता से) [अस्मान्] हमारे से [द्वेष्टि] द्वेष करता है (वा) [यम्] जिस प्राणी से अज्ञानवश [वयम्] हम [द्विष्मः] द्वेष करते हैं [तम्] उसको हम [वः] आप (ईश्वर) के [जम्भे] वश में [दध्मः] दग्ध करते है (जिससे वह प्राणी हम से द्वेष न करे और न हम उससे द्वेष करें किन्तु सब परस्पर मित्र हो जावें) ॥

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ५ ॥

अथर्व० ३। ३७। ५॥

५. *शब्दार्थ*— (वह परमेश्वर) [ध्रुवा] नीचे की [दिक्] दिशा में [विष्णः] सर्वव्ययापक [अधिपतिः] स्वामी (है) (जोकि) [कल्माषग्रीवः] हरे रंग की वृक्षादिरूप ग्रीवा वाला है (अर्थात् हरे २ वृक्ष, वनस्पति आदि जिसकी ग्रीवा के समान हैं) और [रक्षिता] हमारा रक्षक है (वा जिसके) [इषवः] रक्षारूपी बाण [वीरुधः] लता, वनस्पति, वृक्षादि हैं (जिससे हमारा जीवन होता है) [तेभ्यः] उन (वृक्षादि रक्षकों) के लिए [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो, [अधिपतिभ्यः] (वनस्पतियों के) स्वामी (वृक्षादि) को [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो, [रक्षितृभ्यः] उन रक्षा करने वाले (वृक्षादि) के लिए [नमः] हमारा नमस्कार

(आदर) हो, [इषुभ्यः] (रक्षा करने वाले वनस्पति वृक्षादिरूपी) बाणों के लिए [नमः] (हमारा) नमस्कार (आदर) हो (वा) [एभ्यः] इन सब (वृक्ष, वनस्पति औषधि आदि) को [अस्तु] (हमारा बारम्बार नमस्कार–आदर) हो। [यः] जो प्राणी (अज्ञान से) [अस्मान्] हमारे से [द्वेष्टि] द्वेष करता है वा [यम्] जिस प्राणी से (अज्ञानता से) [वयम्] हम [द्विष्मः] द्वेष करते हैं [तम्] उसको (हम) [वः] आप (ईश्वर) के [जम्भे] वश में [दध्मः] दग्ध करते हैं (जिससे वह प्राणी हमसे द्वेष न करे और न हम उससे द्वेष करें किन्तु हम सब परस्पर मित्रभाव से वर्त्तें) ॥

ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥

अथर्व० ३। २७। ६॥

६. *शब्दार्थ*—(वह परमेश्वर) [ऊर्ध्वा] ऊपर वाली [दिक्] दिशा में [बृहस्पति] बृहस्पति (अर्थात् सर्वोत्तम, सर्वश्रेष्ट, वेदों का उपदेश करने वाला अथवा महान् आकाशादि से बड़ा) [अधिपति] स्वामी (अधिष्टाता) [श्वित्रः] ज्ञानमय शुद्ध पवित्र वा [रक्षिता] हमारी रक्षा करने वाला है (जिसके) [इषवः] रक्षारूपी बाण [वर्षम्] वर्षा (के बिन्दु) हैं। [तेभ्यः] उन (वर्षारूपी बाणोंके लिए) [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो। [अधिपतिभ्य]:

(उन अन्नादि उपज हेतु प्राणों के) स्वामी (वर्षा बिन्दुओं) के लिए [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो, [रक्षितृभ्यः] रक्षा करने वाले वर्षा बिन्दुओं के लिए [नमः] हमारा नमस्कार (आदर) हो, [इषुभ्यः] (हमारी रक्षा करने वाले वर्षा रूपी) बाणों के लिए [नमः] (हमारा) नमस्कार (आदर) हो (वा) [एभ्यः] इन वर्षा बिन्दुओं के लिए [अस्तु] (हमारा बारम्बार नमस्कार-आदर) हो। [यः] जो प्राणी (अज्ञानता से) [अस्मान्] हमारे से [द्वेष्टि] द्वेष करता है वा [यम्] जिस प्राणी से [वयम्] हम (अज्ञानवश) [द्विष्मः] द्वेष करते हैं। [तम्] उसको [वयम्] हम [वः] आप (परमेश्वर) के [जम्भे] वश में [दध्मः] दग्ध करते हैं (जिससे वह हमसे द्वेष न करे और न हम उससे द्वेष करें किन्तु परस्पर मित्र हो जावें)॥

(इन छः मन्त्रों का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य सर्वशक्तिमान्, सर्वगुरु, न्यायकारी, दयालु परमपिता परमेश्वर को ही सब दिशाओं में सर्वत्र रक्षक मानें और किसी से द्वेष न करें)॥

उपस्थान मन्त्र

(ईश्वर उपासना के मन्त्र)

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १॥

यजु० ३५। १४॥

१. *शब्दार्थ*—(हे परमात्मन्! आप जो) [तमसपरि] अविद्या अंधकार से परे (रहित), प्रकाशस्वरूप (ज्ञानस्वरूप), [स्वः] सर्वानन्दस्वरूप (सुखस्वरूप वा सुखदाता), [उत्तरम्] जगत् के

प्रलय के अनन्तर (पश्चात् अर्थात् पीछे) भी (नित्यस्वरूप होने से) सदा विराजमान, [देवम्] ज्ञानस्वरूप वा आनन्दस्वरूप वा धर्मात्मा मुमुक्षुओं को सर्वानन्द देने वाले, [देवत्रा] सब दिव्यगुण युक्त पदार्थों में अनन्त दिव्यगुण युक्त (अर्थात् अनुपम अनन्त गुण वाले) [सूर्यम्] सब चराचर जगत् के आत्मा (अर्थात् सब पदार्थों वा जीवों में व्यापक वा उनके अन्तरात्मा), [ज्योतिः] स्वप्रकाशस्वरूप वा सर्व सूर्य चन्द्रादि के प्रकाशक, [उत्तमम्] सर्वोत्कृष्ट (सर्वोत्तम) (हैं) (आपको) [वयम्] हम लोग [पश्यन्तः] (ज्ञानदृष्टि) से देखते हुए [उदगन्म=उत्+अगन्म] उत्कृष्ट श्रद्धावान् होकर (आपको) प्राप्त हों (अर्थात् साक्षात् जानकर मोक्ष को प्राप्त हों यही हमारी आपसे सदा प्रार्थना है। हमें आप अपनी कृपा से शीघ्र प्राप्त हों)॥

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ २ ॥

यजु० ३३ । ३१ ॥

२. *शब्दार्थ*—[जातवेदसम्] ऋग्वेदादि चारों वेदों का प्रकाशक (वा सर्वज्ञानप्रद) वा सकल उत्पन्नमात्र जगत् के पदार्थों को जानने वाले, [देवम्] अनन्त दिव्यगुण युक्त सर्वानन्दप्रद वा सर्वप्रकाशक, [सूर्यम्] चराचर सर्वजगत् के आत्मा (अर्थात् सब पदार्थों वा जीवों में व्यापक वा उनके अन्तरात्मा) [त्यम्] उस (पूर्वोक्त परमात्मा) को [केतवः] किरणें (अर्थात् विविध प्रकार के जगत् की रचनादि के विज्ञानयुक्त नियमों को प्रकाशित करने वाले ईश्वर के गुण) [उ] निश्चय से (उद्वहन्ति=उत्+वहन्ति] उत्कृष्टता से प्राप्त कराते, जनाते वा प्रकाशित करते हैं (इन विविध अद्भुत आपके

नियमों को देखकर कोई नास्तिक भी आपको नहीं छोड़ सकता) (उसी अन्तर्यामी परमात्मा की) [विश्वाय] विश्व (अर्थात् सम्पूर्ण जगत् वा सर्वविद्या वा सर्वज्ञान) को [दृशे] देखने अर्थात् जानने वा प्राप्त करने के लिए (हम सदा उपासना करें अन्य किसी की नहीं) ॥

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षँ सूर्य्यआत्माजगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥

यजु० ७ । ४२ ॥

३. *शब्दार्थ*— (जो परमेश्वर) [चित्रम्] अद्भुतस्वरूप (आश्चर्यस्वरूप, आश्चर्यगुणयुक्त), [देवानाम्] विद्वानों के हृदय में [उद्गात्] उत्कृष्टता से प्राप्त (प्रकाशित), [अनीकम्] (हमारे सब दुःखों वा काम, क्रोधादि शत्रुओं के विनाशार्थ एक परम) बल (शक्ति), [मित्रस्य] सर्वमित्र (सबसे द्वेष रहित), प्राण वा सूर्य-लोक का (वा) [वरुणस्य] श्रेष्ठ मनुष्य (के ज्ञान) का (वा) [अग्ने] (शिल्पविद्या हेतु) अग्नि अथवा विद्युत का [चक्षुः] चक्षु अर्थात् प्रकाशक वा विज्ञापक, [द्यावापृथिवी] सूर्य, पृथिवी आदि सब लोकों को (वा) [अन्दरिक्षम्] अनन्त आकाश को [आप्राः] (इन सब अर्थात् सब जगत् को उत्पन्न करके) अच्छी प्रकार से धारण वा रक्षण करने वाला, [जगतः] प्राणी जगत् का (वा) [तस्थुषः] स्थावर अर्थात् जड़ जगत् का [आत्मा] आत्मा अर्थात् इन सब चराचर (चेतन वा जड़) जगत् में व्यापक [सूर्यः] प्रकाश-स्वरूप वा सर्वप्रकाशक है (उसी परमात्मा का हम) [स्वाहा]

अपने सत्य शुद्ध हृदय में आह्वान करें (और उसके अतिरिक्त अन्य किसी की शरण न जायें अथवा उपासना करें, यही वेद में ईश्वराज्ञा है सो सब मनुष्य को माननी चाहिए) ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥

यजु० ३६ । २४ ॥

४. शब्दार्थ—[तत्] उस [चक्षुः] सर्वद्रष्टा अर्थात् चक्षु की न्याईं सबको देखने वाले, [देवहितम्] धर्मात्मा विद्वानों स्वसेवकों के हितकारी, [परस्तात्] सृष्टि से पूर्व भी विद्यमान् अर्थात् अनादि, [शुक्रम्] सर्वजगदुत्पादक वा शुद्धस्वरूप, [उच्चरत्] उत्कृष्टता से सर्वत्र व्याप्त वा सर्वज्ञाता [तत्] उस (चेतन ब्रह्म को) [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [पश्येम] (ज्ञान चक्षु से) देखें (अथवा उसी की कृपा से हम सौ वर्ष पर्यन्त सब वस्तुओं को देखें अर्थात् हमारी दृष्टि ठीक बनी रहें) (तथा उसी की कृपा से हम) [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [जीवेम्] (उसी की आज्ञा पालन करते हुए, धर्मपथ पर चलते हुए) जीवें अर्थात् प्राणों को धारण करें, (तथा) [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [शृणुयाम्] उसके गुणों, वेद शास्त्रों वा मङ्गल वचनों को) सुनें (तथा) [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [प्रब्रवाम] (दूसरों को उसी ब्रह्म का वा वेद शास्त्रों का) उपदेश करें, (तथा) [शतम्] सौ [शरदः] वर्ष पर्यन्त [अदीना] अदीन अर्थात् दीनता वा दरिद्रता रहित वा सदा

स्वतन्त्र [स्याम] रहें, [च] और [शतात्] सौ [शरदः] वर्ष से (भी) [भूयः] अधिक (हम, देखें जीवें, सुनें, उपदेश करें और अदीन रहें) ॥

(अर्थात् मनुष्यों को अत्यन्त कृपालु परमेश्वर छोड़कर अन्य किसी की उपासना न करनी चाहिए। यदि कोई किसी अन्य की उपासना करता है वह पशु समान है। इस लिए इन उपस्थानादि मन्त्रों द्वारा सर्वदा सब कार्यों की सिद्धि करने वाले परमेश्वर की ही अत्यन्त प्रेम वा श्रद्धा से हाथ जोड़ कर स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिए) ॥

गुरु मन्त्र (गायत्री मन्त्र)

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यजु० ३६। ३ ॥

शब्दार्थ— [ओ३म्] ओ३म् (परमात्मा का सर्वोत्तम और प्रसिद्धत्तम नाम जिस एक नाम में ही परमात्मा के अनेक नाम आ जाते हैं—यथा इसकी 'अ' मात्रा से अग्नि (प्रकाशस्वरूप), विराट (विविध चराचर जगत् के प्रकाश करने वाला) वा बिश्व (सब जगत् में व्यापक वा जिसमें सब जगत् स्थित है) आदि, 'उ' मात्रा से हिरण्यगर्भ (सूर्यादि तेजस जिसमें गर्भ की न्याईं स्थित है), वायु वा तेजस (प्रकाशस्वरूप वा सूर्यादि का प्रकाशक) आदि वा 'म' मात्रा से ईश्वर (सर्वशक्तिमान् अनन्त ऐश्वर्य वाला वा न्यायकारी), आदित्य (अविनाशी) वा प्राज्ञ (सर्वज्ञ) आदि से जानना। जैसे पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध होता है वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा

का सम्बन्ध है)। [भूः] प्राणप्रिय वा प्राणाधार, [भुवः] (मुमुक्षु, धर्मात्मा वा स्वसेवकों के) सब दुःखों का दूर करने वाला, [स्वः] सुखस्वरूप वा सर्वव्यापक (है) [तत्] उस (ब्रह्म) [सवितुः] सर्वजगदुत्पादक वा सर्वपिता, [देवस्य] प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वानन्दप्रद वा सबका कामना करने योग्य के [वरेण्यम्] सबसे वरणे (अर्थात् स्वीकार करने) योग्य (अतिश्रेष्ठ वा ध्यान करने योग्य) [भर्गः] शुद्ध, पवित्र, निष्पाप (सकल दोष रहित) स्वरूप को [धीमहि] हम (सदा प्रेम भक्ति से अपने आत्मा में) धारण करें अर्थात् उसकी उपासना करें [यः] जो (परमात्मा) [नः] हमारी [धियः] धारणवती बुद्धियों को [प्रचोदयात्] (उत्तम गुण कर्म स्वभावों में अर्थात् सन्मार्ग में) प्रेरित (प्रवृत्त) करे ।।

(संक्षेप्तार्थ—हे सच्चिदानन्द अनन्तस्वरूप! हे शुद्ध मुक्त-स्वभाव! हे अज, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, करुणामय पिता! हे सर्वजगदुत्पादक! हम आपके अत्यन्त सुन्दर स्वीकरणीय शुद्धस्वरूप का सदा ध्यान करें। इस प्रयोजन के लिए कि आप कृपया हमारी बुद्धियों को सदा सन्मार्ग पर चलायें। ऐसे प्रातः सायं दोनों सन्धि बेलाओं में एकान्त में शान्तात्मा होकर अन्तर्यामी परमात्मा का प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए) ।।

गायत्री मन्त्र का दोहा

आप हो हो सबके रक्षक, परमपिता हमारे तुम्ही हो।
आप हो 'भूः' प्राणाधार, प्राणप्रिय हमारे तुम्ही हो।
आप हो 'भुवः' दुःखविनाशक, सर्वदुःखरहित तुम्ही हो।
आप हो 'स्वः' सर्वव्यापक, सुखस्वरूप ब्रह्म तुम्ही हो।
आप हो 'सविता' जगदुत्पादक, सर्वपिता सर्वेश्वर तुम्ही हो।
आप हो 'वरेण्य' सर्वश्रेष्ठ, सबके वरणे योग्य तुम्ही हो।

आप हो 'भर्ग' शुद्धस्वरूप, सदा पवित्र निष्पाप तुम्ही हो।
आप हो 'देव' सर्वप्रकाशक, सर्वानन्द तुम्ही हो।
आपके शुद्धस्वरूप का करें सदा हम ध्यान ;
हमारी 'धी' बुद्धियों को प्रेरित करो भगवान् ॥

अथ समर्पण

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि-कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥

शब्दार्थ—हे करुणानिधि ईश्वर! जो-जो उत्तम काम हम लोग करते हैं वे सब आपके ही अर्पण हैं। आपकी कृपा से इस हमारे जाप वा उपासनादि कर्म द्वारा हमें धर्म (सत्यन्यायाचरण) अर्थ (धर्म से पदार्थों की प्राप्ति), काम (धर्म व अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन) वा मोक्ष (सब दुःखों से छूट कर परमानन्द में रहना) की सिद्धि शीघ्र ही प्राप्त हो॥

नमस्कार मन्त्र

ओं नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजु० १६। ४१॥

शब्दार्थ—[शम्भवाय] सुखरूप व सुखप्रद परमेश्वर को (हमारा) [नमः] नमस्कार (अत्यन्त सत्कार) हो, [च] वा [मयोभवाय] सांसारिक सर्वोत्तम सुखप्रदाता को (हमारा नमस्कार है), [च] और [शङ्कराय] सब जीवों के कल्याणकर्ता वा सदा

धर्मयुक्त कर्मों के करने वाले को [नमः] (हमारा) नमस्कार हो, [च] वा [मयस्कराय] मन, इन्द्रिय, प्राण व आत्मा के सुखदाता वा अपने भक्तों को धर्म कामों में युक्त करने वाले को (हमारा नमस्कार हो), [च] और [शिवाय] अत्यन्त मङ्गलस्वरूप वा मङ्गलकारी को [च] वा [शिवतराय] अत्यन्त कल्याणस्वरूप वा (धार्मिक मनुष्यों के लिए) मोक्षसुखप्रदाता को [नमः] (हमारा) नमस्कार हो ।।
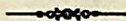
परिशिष्ट २

(अथ ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना मन्त्राः)

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रंतन्नआसुव ।। १ ।।

यजु० अ० ३, म० ३ ।।

शब्दार्थ—[देव] हे दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्त, प्रकाशस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वसुखदाता परमेश्वर ! [सवितः] हे सकलजगदुत्पादक ! (आप कृपा करके) [नः] हमारे [विश्वानि] सम्पूर्ण (सब) [दुरितानि] दुर्गुण, दुर्व्यसन वा दुःखों को [परा] दूर [सुव] कीजिये (और) [यत्] जो [भद्रम्] कल्याणकारक (सुखकर) गुण, कर्म, स्वभाव वा पदार्थ हैं [तत्] वे (सब) [नः] हमको [आ] अच्छी प्रकार [सुव] उत्पन्न अर्थात् प्राप्त कराइये ।। १ ।।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य
जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै
देवाय हविषा विधेम ।। २ ।।

यजु० अ० १३, म० ४ ।।

शब्दार्थ—[हिरण्यगर्भः] जिस (परमेश्वर) के गर्भ में (अर्थात्

भीतर) सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ विद्यमान है अथवा जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ (उत्पत्ति स्थान) है अर्थात् जो स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्यचन्द्रमादि पदार्थ (उत्पन्न करके) धारण कर रक्खे हैं (वा) [अग्रे] जो सृष्टि से पूर्व (भी) [समवर्तत] वर्तमान (विद्यमान) था वा [भूतस्य] उत्पन्न हुए सम्पूर्ण (कार्यरूप) सम्पूर्ण जगत् का [जातः] प्रसिद्ध [पतिः] पालक वा स्वामी [एकः] एक हो (अद्वितीय असहाय) [आसीत्] था [सः] वह (ही परमेश्वर) [इमाम्] इस [पृथिवीम्] पृथिवी (भूमि) को [उत्] और [द्याम्] प्रकाशमय सूर्यचन्द्रमादि को [दाधार] धारण कर रहा है। (हम लोग उस) [कस्मै] सुखस्वरूप [देवाय] प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक, दिव्यगुणकर्मस्वभावयुक्त, सर्वज्ञ परमात्मा के लिए [हविषा] योगाभ्यास वा अत्यन्त प्रेम वा श्रद्धा से [विधेम] विशेष भक्ति करें अर्थात् आत्मादि सर्व समर्पण से यथावत् पूजा करें ॥ २ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यजु० अ० २५, म० १३ ॥

शब्दार्थ—[यः] जो (परमात्मा) [आत्मदाः] आत्मज्ञान का दाता अथवा विद्याविज्ञानप्रद, [बलदाः] शरीर, इन्द्रिय, मन, आत्मा वा समाज के बल का देने वाला, [यस्य] जिसकी [विश्वे] सब [देवाः] विद्वान लोग [उपासते] उपासना करते हैं और [यस्य]

जिसका [प्रशिषम] प्रशासन (सत्यस्वरूप शासन वा न्याय अथवा शिक्षा) को (मानते हैं), [यस्य] जिसकी [छाया] आश्रय (ही) [अमृतम्] अमृत अर्थात् मोक्षसुखदायक (है) और [यस्य] जिसकी (आज्ञाभङ्ग अथवा अनाश्रय अर्थात् जिसका न मानना वा भक्ति न करना ही दुष्टजनों के लिए) [मृत्युः] मृत्यु (अर्थात् बारम्बार जन्म-मरण) का कारण है (उस) [कस्मै] सुखस्वरूप [देवाय] दिव्यस्वरूप, सर्वज्ञ, सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा के लिए [हविषा] आत्मा वा शुद्ध अन्तःकरण से [विधेम] विशेभक्ति करें अर्थात् उसकी (वेदोक्त) आज्ञा पालन करने में सदा तत्पर रहें ।। ३ ।।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक
इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे ऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। ४ ।।

यजु० अ० २३, म० ३ ।।

शब्दार्थ— [यः] जो परमात्मा [प्राणतः] प्राण वाले [निमिषतः] अप्राणोरूप [जगतः] जगत् का [महित्वा] अपनी (अनन्त) महिमा से [एकः] एक अर्थात् अद्वितीय असहाय [इत्] ही [राजा] (विराजमान) राजा अथवा अधिष्टाता [बभूव] था (वा है वा) [यः] जो (परमात्मा) [अस्य] इस [द्विपदः] मनुष्यादि दो पाद वाले [च] और [चतुष्पदः] चार पाद वाले गौ आदि प्राणियों के शरीरों को [ईशे] रचना करता है (हम उस) [कस्मै] सुखस्वरूप [देवाय] सकल ऐश्वर्य के देने हारे प्रकाशस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा के लिए [हविषा] अत्यन्त प्रेम वा

श्रद्धा अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्री से [विधेम] विशेष भक्ति करें ।। ४ ।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। ५ ।।

यजु० अ० ३२, म० ६ ।।

शब्दार्थ—[येन] जिस (परमात्मा) ने [द्यौः] सूर्यचन्द्रमादि प्रकाशमय लोकों को [उग्रा] तीक्ष्ण स्वभाव वाले (तेज स्वभाव वाले) [च] वा [पृथिवी] पृथिवी (भूमि) को [दृढ़ा] दृढ़ किया है अथवा जिसने इन सब द्युलोक वा पृथिवी आदि को धारण किया है, [येन्] जिस (जगदीश्वर) ने [स्वः] सुख को [स्तभितम्] धारण किया है, [येन] जिस (ईश्वर) ने [नाकः] दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (और) [यः] जो [अन्तरिक्षे] अन्तरिक्ष में [रजसः] सब लोकलोकान्तरों को [विमानः] विशेष मानयुक्त निर्माण करता और विशेष मानयुक्त गति से भ्रमण कराता है (उस) [कस्मै] सुखस्वरूप वा सुखदायक [देवाय] सकलप्रकाशक, सकल-सुखदायक वा अत्यन्त कमनीय (कामना के योग्य) ब्रह्म की [हविषा] प्रेमभक्ति भाव वा सब सामर्थ्य से [विधेम] विशेष भक्ति करें ।। ५ ।।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वाजातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

ऋ० मण्डल १०, सू० १२१, म० १० ॥

शब्दार्थ—[प्रजापते] हे सब प्रजा के स्वामी परमपिता जगदीश्वर ! [त्वत्] आप से [अन्यः] भिन्न दूसरा कोई [ता] उन [एतानि] इन [विश्वा] सब [जातानि] उत्पन्न हुए जड़, चेतनादि (महान् आश्चर्यमय) पदार्थों को [न] नहीं [परिबभूव] तिरस्कृत कर सकता (क्योंकि आप ही इन सबको उत्पन्न करने वाले वा इन सबसे सर्वोपरि हो और दूसरे किसी की तो इनको उत्पन्न करने की शक्ति ही नहीं तो इनका वह तिरस्कार कैसे कर सकता है)। [यत्कामाः] जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग [ते] आपका [जुहुमः] आश्रय लेवें (और वांछा करें) [तत्] उस-उस (की कामना) [नः] हमारी [अस्तु] सिद्ध होवे (जिससे) [वयम्] हम लोग [रयीणाम्] धनैश्वर्यों के (सब पुष्कल उत्तम धन धान्यादि पदार्थों के) [पतयः] स्वामी [स्याम] होवें ॥ ६ ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये
धामन्नध्यैरन्त ॥ ७ ॥

यजु०, अ० ३२, म० १० ॥

शब्दार्थ—[सः] वह (परमात्मा) [नः] हमारा [बन्धुः] भ्राता के समान प्रिय, सुखदायक, दुःखनाशक वा सहायक (वा) [जनिता] सकल जगत् (वा हमारे शरीरों) का उत्पादक (वा पालन करने वाला पिता) है। [सः] वह (ही) परमात्मा [विधाता] सब जगत् का रचने वा धारण करने वाला अथवा हमारे सब कामों की सिद्धि करने वाला (तथा) [विश्वा] सब [भुवनानि] लोकलोकान्तरों (को रच के इनके) [धामानि] नाम, स्थान वा जन्मों को [वेद] जानता है, [यत्र] जिस [तृतीये] तीसरे (अर्थात् एक जीव, दूसरी प्रकृति और तीसरा ब्रह्म–उस तीसरे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर में) [धामन्] सब लोकलोकान्तरों वा मोक्ष को धारण करने वाले आधारस्वरूप परब्रह्म में [अमृतम] मोक्ष सुख को [आनशानाः] प्राप्त होकर [देवाः] विद्वान् धर्मात्मा योगी लोग [अध्यैरन्त] (जन्म-मरण वा अन्य सब दुःखों से छूट कर, विज्ञानवान् शुद्ध होके) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ।। ८ ।।

यजु०, अ० ४०, म० १६ ।।

शब्दार्थ—[अग्ने] हे स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सर्वपूजनीय जगदीश्वर ! [देवः] हे दिव्यस्वरूप सकलसुखदाता परमेश्वर ! [विद्वान्] हे सम्पूर्ण विद्यायुक्त सर्वज्ञ ईश्वर ! (आप) [अस्मान्] हम लोगों को [राये] ज्ञान विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए [सुपथा] अच्छे (धर्मयुक्त आप्त लोगों के) मार्ग से [विश्वानि] सम्पूर्ण (सब) [वयुनानि) उत्तम ज्ञान वा कर्म [नय] प्राप्त कराइये (और) [अस्मत्] हमारे [जुहुराणम्] कुटिलतायुक्त [एनः] पापरूप कर्म को [युयोधि] पृथक (दूर) कीजिये। (इस कारण हम) [ते] आपकी [भूयिष्ठाम्] बहुत [नम उक्तिम्] नम्रता पूर्वक स्तुति [विधेम] (सदा) किया करें (और सर्वदा आनन्द में रहें) ।।

परिशिष्ट ३

(यजुर्वेद के चौंतीसवें अध्याय के शिवसङ्कल्प के छः मन्त्र)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे
मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। १ ।।

यजु० ३४ । १ ॥

शब्दार्थ—(हे जगदीश्वर!) [यत्] जो (मन) [दैवम्] देव अर्थात् जीवात्मा का मुख्य साधन, [दूरंगमम्] दूरगमन-शील अर्थात् दूर जाने का जिस का स्वभाव है, [ज्योतिषाम्] अग्नि सूर्य इन्द्रादि प्रकाशकों का (भी) [ज्योतिः] प्रकाशक (अर्थात् जिस के योग के बिना जीवात्मा को किसी पदार्थ का प्रकाश नहीं होता), [एकम्] एक असहाय, [जाग्रतः] जागते हुए (मनुष्य) का [दूरम्] दूर-दूर [उदैति] भागता है [उ] और [तत्] वह (ही) [सुप्तस्य] सोये हुए (मनुष्य का [तथैव] उसी प्रकार [एति] (सुषुप्ति को) प्राप्त होता है (वा स्वप्न में दूर-दूर जाने के समान व्यवहार करता है) [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन (सङ्कल्प विकल्प वाला मननशील) [शिवसङ्कल्पम्] कल्याण-कारी सङ्कल्प वाला (अर्थात् अपने वा दूसरे प्राणियों के अर्थं कल्याण का संकल्प करने हारा) [अस्तु] होवे ॥ १ ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। २ ।।

यजु० ३४ । २ ।।

शब्दार्थ—(हे परमेश्वर !) [येन] जिस (मन) से [अपसः] सदा कर्मनिष्ठ, [मनीषिणः] मन का दमन करने वाले (धर्मयुक्त विद्वान लोग) (वा) [धीराः] ध्यान करने वाले बुद्धिमान लोग [यज्ञ] (अग्निहोत्रादि धर्मसंयुक्त व्यवहार अर्थात् परोपकारी कर्म वा योगाभ्यास) यज्ञ में (वा) [विदथेषु] विज्ञानसम्बन्धि वा युद्धादि व्यवहारों में [कर्माणि] (अत्यन्त इष्ट) कर्मों को [कृण्वन्ति] करते हैं (और) [यत्] जो [अपूर्वम्] अपने (अनुत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला अर्थात् अपूर्व सामर्थ्ययुक्त) (वा) [प्रजानाम्] प्राणिमात्र के [अन्तः] हृदय में [यक्षम्] पूजनीय (हो रहा है) [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन (मननविचारात्मक) [शिवसङ्कल्पम्] धर्मेष्ट अर्थात् सदा धर्मकर्म करने की इच्छायुक्त [अस्तु] होवे ।। २ ।।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। ३ ।।

यजु० ३४ । ३ ।।

शब्दार्थ—(हे जगदीश्वर !) [यत्] जो (मन) [प्रज्ञानम्]

उत्कृष्ट ज्ञानयुक्त (अर्थात् विशेष कर ज्ञान का साधन, बुद्धिस्वरूप) [उत्] और [चेतः] स्मृति का साधन (जिस के द्वारा स्मरण किया जाता है), [धृतिः] धैर्यस्वरूप वा (निश्चयात्मकवृत्ति) [च] वा (लज्जादि कर्मों का हेतु) [यत्] जो [प्रजासु] प्रजाओं (मनुष्यों) के [अन्तः] भीतर (अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से) [अमृतम्] नाशरहित [ज्योतिः] प्रकाशयुक्त (है वा) [यस्मात] जिस के [ऋते] विना [किञ्चन] कोई भी [कर्म] काम [न] नहीं [क्रियते] किया जाता है [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] (सब कामों का साधनरूप) मन [शिवसङ्कल्पम्] (सदा) शुभगुणों की इच्छा वाला (अथवा कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला) [अस्तु] होवे ॥ ३ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि-
गृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥

यजु० ३४ । ४ ॥

शब्दार्थ— (हे जगदीश्वर !) [येन] जिस [अमृतेन] नाशरहित (परमात्मा) के साथ युक्त होने वाले से [भूतम्] व्यतीत हुआ, [भुवनम्] वर्त्तमान कालसम्बन्धी (वा) [भविष्यत्] भविष्य में होने वाला [सर्वम्] समग्र (सब कुच्छ) [इदम्] यह त्रिकालस्थ वस्तुमात्र [परिगृहीतम्] सब ओर से गृहीत अर्थात् जाना जाता है (वा जो) [सप्तहोता] सात पदार्थों (अर्थात् पांच ज्ञानेद्रिय, बद्धि वा जीवात्मा) से युक्त (रहता है तथा) [येन]

जिस के द्वारा [यज्ञः] (योगरूप) यज्ञ [तायते] विस्तृत किया जाता है, [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसङ्कल्पम्] (सदा अविद्यादिक्लेशों से पृथक् हो कर) शिव (मोक्षरूप) संकल्प (इच्छा) वाला [अस्तु] होवे ॥ ४ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूᳬंषि
यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तᳬं सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥

यजु० ३४ । ५ ॥

शब्दार्थ—(हे भगवन् कृपानिधे !) [यस्मिन्] जिस (मन) में [ऋचः] ऋग्वेद, [सामः] सामवेद (वा) [यजूंषि] यजुर्वेद [रथनाभाविव=रथनाभौ+इव] जैसे रथ (के पहिये) के बीच (धुरा) में [अराः] आरे (लगे होते हैं वैसे) [प्रतिष्ठिता] प्रतिष्ठित (सब ओर स्थित) रहते हैं (वा) [यस्मिन्] जिस (मन) में अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित रहता है वा यथार्थमोक्षविद्या भी प्रतिष्ठित होती हैं) वा [यस्मिन] जिस (मन) में [प्रजानाम्] प्राणियों का [चित्तम्] स्मरणात्मक चित्त (अथवा सर्वपदार्थ सम्बन्धी ज्ञान) [सवम्] समग्र [ओतम्] (सूत में मणियों के समान) ओतप्रोत (संयुक्त) है [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसङ्कल्पम्] शिवसंकल्प वाला (अर्थात् कल्याणप्रिय, कल्याणकारी वा वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रचाररूपी सकल्प वाला) [अस्तु] (सदा) होवे ॥ ५ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने-
नीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

यजु० ३४ । ६ ॥

शब्दार्थ—(हे परमेश्वर !) [अश्वानिव=अश्वान्+इव] जैसे घोड़ों को [सुषारथिः] सुन्दर (चतुर) सारथि (सब ओर से चलाता है वैसे) [यत्] जो (मन) [मनुष्यान्] मनुष्यादि प्राणियों को [नेनीयते] शीघ्र इधर उधर घुमाता है (वा) [अभीशुभिः] रस्सियों (लगामों) से [वाजिनइव=वाजिनः+इव) जैसे (वेग वाले) घोड़ों को (सुशिक्षित सारथी वश में रखता है वैसे जो मन इन्द्रियों को वश में रखता है) वा [यत्] जो (मन) [हृत्प्रतिष्ठम्] हृदय में प्रतिष्ठित (स्थित) रहने वाला [अजिरम्] वृद्धादि अवस्था रहित (वा) [जविष्ठम्] अत्यन्त वेगवान (है) [तत्] वह [मे] मेरा [मनः] मन [शिवसङ्कल्पम्] मङ्गलमय नियम में इष्ठ (अर्थात् सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक कर सदा धर्मपथ में चलाने की इच्छा वाला) [अस्तु] होवे ॥ ६ ॥

परिशिष्ट ४

(यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र)

ईशा वास्यमिदᳪं सर्वं यत्किञ्च जगत्याञ्जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।१।।

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो !) [यत्] जो [किञ्च] कुछ [इदम्] यह [सर्वम्] सब [जगत्याम्] गम्यमान सृष्टि में [जगत्] (सदा) चलने वाला जगत् (है सो) [ईशा] सकल ऐश्वर्यसम्पन्न सर्वशक्तिमान् ईश्वर से [वास्यम्] सब ओर से आच्छादित अर्थात् व्याप्त होने योग्य (है)। [तेन] उस [त्यक्तेन] त्याग किये हुए (अर्थात् आसक्तिरहित होकर जगत् के पदार्थों) द्वारा [भुञ्जीथा] भोग कर (किन्तु) [कस्यस्वित्] किसी के भी [धनम्] धन अर्थात् वस्तु मात्र की [मा] मत [गृधः] अभिलाषा (आकांक्षा) कर ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि वह हमें सदा सब ओर से देखता है, यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है ऐसे सर्वव्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके कभी भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं करना चाहते वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख व परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहते हैं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवन्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

शब्दार्थ—(मनुष्य) [इह] इस संसार में [कर्माणि] धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को [कुर्वन्] करता हुआ [एव] ही [शतम्] सौ [समाः] वर्ष [जिजीविषेत्] जीने की इच्छा करे। [एवम्] इस प्रकार (धर्मयुक्त निष्काम कर्मों को करता हुआ) [त्वयि] तुझ [नरे] नर में [कर्म] (अधर्म्य अवैदिक स्वार्थसम्बन्धी) कर्म [न] नहीं [लिप्यते] लिप्त होता, [इतः] इस प्रकार से [अन्यथा] भिन्न [न] (लेपाभाव अर्थात् जन्म मरण के बन्धन में डालने वाला अभाव) नहीं [अस्ति] होता है॥ २॥

भावार्थ—मनुष्य आलस्य को छोड़ कर सर्वद्रष्टा (सबको देखने सारे) न्यायधीश परमात्मा तथा करने योग्य उसकी आज्ञा मानकर शुभ कर्मों को करता हुआ और अशुभ कर्मों को छोड़ता हुआ ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या और अच्छी शिक्षा को पा कर उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ा कर अल्पमृत्यु को दूर करे और युक्त आहार विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवे। जैसे २ मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करता है वैसे २ ही पापकर्म से बुद्धि की निवृत्ति होती जाती है और विद्या आयु और सुशीलता बढ़ती है॥

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

शब्दार्थ—[ये] जो [लोकाः] (देखने वाले) लोग (जन)

[अन्धेन] अन्धकाररूप [तमसा] अज्ञान से [आवृताः] सब ओर से अच्छादित (ढपे हुए) [च] और [के] (जो) कोई [आत्महनः] आत्मा का हनन (अर्थात् उस के विरुद्ध आचरण) करने वाले [जनाः] मनुष्य (हैं) [ते] वे [असुर्य्याः] असुर (अर्थात् अपने प्राणपोषण में ही तत्पर, अविद्यादि से युक्त वा पाप कर्म करने वाले) [नाम] नाम (से प्रसिद्ध होते हैं)। [ते] वे [प्रेत्य] मरने के पीछे [अपि] (और जीते हुए) भी [तान्] दुःख वा अन्धकार से आवृत भोगों को [गच्छन्ति] प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—वे ही दुष्ट मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि कहे जाते हैं जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते और कर्म कुच्छ और ही करते हैं, वे कभी विद्यारूप दुःखसागर से पार हो आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकते। और जो आत्मा, मन, वाणी वा कर्म से एकसा निष्कपट हो कर आचरण करते हैं वे ही मनुष्य देव वा आर्य कहाते हैं और वे ही सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल सुख भोगते हैं ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवाआप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो
मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(हे विद्वान् मनुष्य !) (जो) [एकम्] अद्वितीय, [अनेजत्] कम्पन से रहित अर्थात् अचल, [मनसः] मन (के वेग)

से (भी) [जवीयः] अतिशय वेगवान् वा [पूर्वम्] सर्वत्र व्यापक होने से) सब के आगे [अर्षत्] चलता हुआ (अर्थात् अपनी सर्वत्र व्याप्ति से सब जगह पहले पहुंचा हुआ अर्थात् उपस्थित (जो ब्रह्म है) [एनतः] इस (पूर्वोक्त ईश्वर) को [देवाः] चक्षु आदि इन्द्रियां [न] नहीं [अप्नुवन्] प्राप्त हो सकतीं। [तत्] वह ब्रह्म [तिष्ठत्] (अपने स्वरूप से) स्थिर हुआ (अपनी अनन्त व्याप्ति से) [धावतः] (विषयों की ओर) भागते हुए [अन्यान्] आत्मा के स्वरूप से विलक्षण (मन, वाणी आदि इन्द्रियों) का [अत्येति-अति+ऐति] उल्लंघन कर जाता है। [तस्मिन्] उस (सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर) में (जीव) [मातरिश्वा] अन्तरिक्ष में प्राणों को धारण करने वाले (वायु के तुल्य) जीव [अपः] कर्म वा क्रिया को [दधाति] धारण करता है यह जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—ब्रह्म के अनन्त होने से जहां २ मन जाता है वहां २ प्रथम से ही अभिव्याप्त (पहिले से ही स्थित) ब्रह्म वर्त्तमान् है। उसका विज्ञान शुद्ध मन से होता है। चक्षु आदि इन्द्रियों वा अविद्वानों से वह देखने योग्य नहीं है। वह आप निश्चल हुआ सब जीवों को नियम से चलाता (उन को उनके पापपुण्यानुसार फल देता) और धारण करता है। उसके अति सूक्ष्म इन्द्रियगम्य न होने के कारण धर्मात्मा विद्वान् योगियों को ही उस का साक्षात्कार होता है अन्य को नहीं ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो !) [तत्] वह (ब्रह्म) [एजति] मूर्खों की दृष्टि में) कम्पायमान अर्थात् चलता है (परन्तु वास्तव

में) [तत्] वह [न] नहीं [एजति] चलायमान होता (क्योंकि वह एकरस अखण्डित सर्वत्रव्यापक हो रहा है)। [तत्] वह (ब्रह्म) [दूरे] (अधर्मात्मा, अविद्वान्, अयोगियों से) दूर (अर्थात् उन को क्रोड़ों वर्षों में भी प्राप्त नहीं होता)। (और) [तत्] वह [उ] ही [अन्तिके] धर्मात्मा, विद्वान्, योगियों के अति निकट (है)। [तत्] वह (ब्रह्म) [अस्य] इस [सर्वस्य] सब (जगत् वा जीवों) के [अन्तः] भीतर [उ] और [तत्] वह [अस्य] इस [सर्वस्य] सारे (जगत् वा जीवों के) [बाह्यतः] बाहर (भी विद्यमान हो रहा है) ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! वह ब्रह्म मूढ़ की दृष्टि में कम्पता जैसा है परन्तु वह स्वयं व्यापक होने से कभी चलायमान नहीं होता। जो जन उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलते हैं वे इधर उधर भागते हुए भी उस को नहीं जान पाते। और जो उसकी आज्ञा के अनुकूल अनुष्ठान करते हैं वे अपने आत्मा में स्थिर अति निकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। जो ब्रह्म सब प्रकृति आदि के बाहर वा भीतर अभिव्याप्त होकर अन्तर्यामिरूप से सब जीवों के सब पाप-पुण्यरूप कर्मों को जानता हुआ उन को यथार्थ फल देता है वही सब से ध्यान करने योग्य है और उसी से सब को डरना चाहिये ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो!) [यः] जो (विद्वान् जन) [आत्मन्] परमात्मा के भीतर [एव] ही [सर्वाणि] सब [भूतानि] प्राणियों (अथवा अप्राणियों) को [अनुपश्यति] (विद्याधर्म और योगाभ्यास करने के) पश्चात् (ध्यानदृष्टि से) देखता है [च] और [तु]

फिर (जो) [सर्वभूतेषु] सब प्राणियों (अथवा अप्राणीरूप जगत्) में [आत्मानम्] सर्वव्यापक परमात्मा को (सम्यक् देखता है) (वह विद्वान, धर्मात्मा, योगी) [ततः] तिस पीछे [न] नहीं [विचिकित्सति] संशय को प्राप्त होता है (ऐसा तुम जानो) ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो लोग सर्वव्यापी, न्यायकारी, सर्वज्ञ, सनातन, सब के आत्मा, अन्तर्यामी वा सब के द्रष्टा परमात्मा को जानकर सुख दुःख हानि लाभों में अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को जान कर धार्मिक होते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो !) [यस्मिन्] जिस (परमात्मा) में [विजानतः] विशेषकर (ध्यानदृष्टि से) देखते हुए को [सर्वाणि] सब [भूतानि] प्राणीमात्र [आत्मा] अपने आत्मा के (तुल्य) [एव] ही [अभूत] (सुख दुःख वाले) होते हैं [तत्र] उस (परमात्मा में) [एकत्वम्] (परमात्मा के) अद्वितीयत्व को [अनुपश्यतः] अनुकूल (योगाभ्यास द्वारा साक्षात्) देखते हुए (योगी) को [कः] क्या [मोहः] मूढ़ावस्था (और) [कः] क्या [शोकः] शोक (सन्ताप) (होता है अथवा कुच्छ भी नहीं) ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्वान सन्यासी लोग परमात्मा के सहचारी प्राणीमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं अर्थात् जैसे अपना हित चाहते हैं वैसे ही अन्यों में भी वर्त्तते हैं और एक अद्वितीय परमेश्वर की शरण को प्राप्त होते हैं उन को मोह, शोक, लोभादि दोष कभी प्राप्त नहीं होते । और जो लोग अपने आत्मा को यथावत् जानकर परमात्मा को जानते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो !) [सः] वह (परमात्मा) (परि+अगात्=पर्यगात्] (आकाश के समान) सब ओर सब जगह परिपूर्ण (व्यापक), [शुक्रम्] शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान् (अनन्त बलवान वा सब जगत् को करने वाला), [अकायम्] (स्थूल, सूक्ष्म वा कारण) शरीर से रहित अर्थात् जो कभी कोई शरीर अथवा अवतार धारण नहीं करता), [अव्रणम्] छिद्ररहित वा अच्छेद्य, [अस्नाविरम्] नाड़ी आदि के साथ सम्बन्धरूप बन्धन स रहित, [शुद्धम्] अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र, [अपापविद्धम्] जो कभी पापयुक्त पापकारी वा पापप्रिय नहीं होता अथवा कभी अन्याय नहीं करता, [कविः] त्रैकालज्ञ वा सर्वज्ञ. [मनीषा] (सब जीवों के) मनों की वृत्तियों का जानने वाला, [परिभूः] सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण, सब के ऊपर विराजमान अथवा दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला (वा) [स्ययम्भू.] अनादिस्वरूप है (जिसका आदि कारण कोई नहीं). जिसकी संयोग से उत्पत्ति, वियोग से नाश, माता, पिता, गर्भवास, वृद्धि, क्षय नहीं होती) (वह) [शाश्वतीभ्यः] (अपनी) सनातन (अनादिस्वरूप, उत्पत्ति वा नाश से रहित) [समाभ्यः] प्रजाओं के लिये [याथातथ्यतः] यथार्थतया (अर्थात् ठीक तौर

पर) [अर्थात्] (वेदद्वारा सब) पदार्थों का [व्यदधात्] बोध कराता है (अथवा सब पदार्थ प्रदान करता है अथवा सत्यविद्या वेद का उपदेश करता है) ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो अनन्तशक्तियुक्त, अजन्मा, निरन्तर, सदामुक्त, न्यायकारी, निर्मल, सर्वज्ञ, सब का साक्षी, नियन्ता, अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द अर्थ और उन के सम्बन्ध को जानने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान न होवे और न कोई धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को भोगने को समर्थ हो सके। इस लिये इसी ब्रह्म की सदा उपासना करो ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳬं रताः ॥९॥

शब्दार्थ—[ये] जो मनुष्य (परमेश्वर को छोड़ कर) [असम्भूतिम्] (अनादि सत्व रज वा तमोगुणमय जड़) प्रकृति को [उपासते] उपासना करते हैं (उपासना भाव से जानते हैं) (वे) [अन्धम्] (ज्ञान पर) आवरण करने वाले [तमः] अन्धकार को [प्रविशन्ति] प्रवेश करते हैं (अर्थात् प्रकर्ष से प्राप्त होते हैं) (और) [ये] जो [सम्भूत्याम्] (प्रकृति से परिणाम को प्राप्त हुई) सृष्टि में [रताः] रमण करते हैं [ते] वे [उ] निश्चय से [ततः] उस से (भी) [भूय इव] अधिक जैसे [तमः] अविद्यामय अन्धकार को (प्राप्त होते हैं) ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य समस्त जड़ जगत् के अनादि कारण प्रकृति की उपासना भाव से स्वीकार करते हैं वे अविद्या को प्राप्त

हो कर सदा क्लेश में रहते हैं और जो इस कारण प्रकृति से उत्पन्न अनित्य स्थूल जगत् (अर्थात् पृथिवी सूर्यादि अथवा सुवर्णादि) का इष्ट उपास्य मानते हैं वे गाढ़ अविद्या को पा कर अधिकतर क्लेश को प्राप्त होते है। इस लिये सब को सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्मा की ही उपासना करनी चाहिये ।।

अ यदेवाहुः सम्भवाद यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।१०।।

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग) [धीराणाम्] मेधावी, विद्वान् योगियों से (जो वचन) [शुश्रुम] सुनते है, [ये] जो (वे लोग) [नः] हमारे प्रति [तत्] उसे [विचचक्षिरे] व्याख्यापूर्वक कहत हैं (वे लोग) [सम्भवात्] संयोगजन्यकार्य का [अन्यत्] और (भिन्न) [एव] ही (फल) [आहुः] कहते हैं (वा) [असम्भवात्] (अनुत्पन्न) कारण प्रकृति का [अन्यत्] और (ही फल) [आहुः] कहते हैं [इति] इस बात (को तुम भी जानो) ।। १० ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग कार्य वा कारणरूप वस्तुओं से भिन्न २ वक्ष्यमाण उपकार लेते और लिवाते हैं तथा उन दोनों के गुणों को जान कर जनाते हैं ऐसे ही तुम लोग भी निश्चय करो ।।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ।।११।।

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो !) [यः] जो विद्वान् [सम्भूतिम्]

(जिस में सब पदार्थ उत्पन्न होते उस) कार्यरूप को [च] और (उस के गुण, कर्म स्वभावों को) तथा [विनाशम्] (जिसमें) पदार्थ नष्ट होते हैं उस) कारणरूप प्रकृति को [च] वा उस के गुण, कर्म स्वभावों को) [सह] एक साथ [तत्] उन [उभयम्] दोनों (कार्य वा कारण स्वरूप जगत्) को [वेद] जानता है (वह विद्वान्) [विनाशेन] नित्यस्वरूप (जाने हुए) कारण के साथ [मृत्युम्] मृत्यु (अर्थात् शरीर छूटने के दुःख को) [तीर्त्वा] पार (उल्लंनन) कर के [सम्भूत्या] (शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप) उत्पन्न हुए कार्यरूप (धर्म में प्रवृत्त कराने वाली) सृष्टि के साथ [अमृतम्] मोक्षासुख को [अश्नुते] प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! कार्यकारणरूप वस्तुएं निरर्थक नहीं हैं किन्तु कार्य वा कारण दोनों के गुण, कर्म वा स्वभावों को जान कर उन को धर्मादि मोक्षसाधनों में अच्छी प्रकार प्रयुक्त कर के अपने शरीरादि के कार्य वा कारणरूप वस्तुओं को नित्यत्व से जान कर मृत्यभय को त्याग कर मोक्ष सिद्धि का सम्पादन करे । इस प्रकार कार्य वा कारणरूप वस्तुओं से अन्य ही फल सिद्ध करना चाहिये ! इन कार्य वा कारण (के ज्ञान) का निषेध तो केवल परमेश्वर के स्थान में उपासना प्रकरण में ही करना चाहिये ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬरताः ॥१२॥

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो !) [ये] जो लोग [अविद्याम्] (परमेश्वर से भिन्न) जड़ वस्तु का ज्ञान (अथवा विपरीत ज्ञान

अर्थात् अनित्य शरीर जगदादि में नित्य की भावना, मलमय शरीरादि अथवा मिथ्याभाषण चोरी आदि अपवित्र को पवित्र समझना, अत्यन्त विषयसेवनरूप दुःख में सुख बुद्धि करना वा शरीरादि जड़ पदार्थों को ही आत्मा अर्थात् चेतन समझना) की [उपासते] उपासना करते हैं (वे) [अन्धम्] आवरण करने वाले (ज्ञानदृष्ठि को ढकने वाले) [तमः] गाढ़ अज्ञान को [प्रविशन्ति] ठीक प्राप्त होते हैं [उ] और [ये] जो (अपने आपको बड़े पण्डित मानने वाले) [विद्यायाम्] केवल शब्द, अर्थ व इनके सम्बन्ध मात्र ज्ञान में (वा अवैदिक आचरण में) [रताः] रमण करते हैं [ते] वे (तो) [ततः] उस से (भी) [भूय इव] अधिकतर [तमः] अज्ञानरूप अन्धकार में (प्रवेश करते हैं) ।। १२ ।।

भावार्थ—जो चेतन (आत्मा) ज्ञानादिगुणयुक्त वस्तु है वह ज्ञाता (जानने वाला) वा जो अविद्यारूप जड़ वस्तु है वह जानने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म है वह केवल उपासना के योग्य वा सेवनीय है। इस से भिन्न जो (जड़ादि वस्तु) है वह उपास्य नहीं किन्तु उपकार लेने योग्य है। जो मनुष्य अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभनिवेश नामक क्लेशों से युक्त हैं वे परमेश्वर को छोड़ उस से भिन्न जड़ वस्तु की उपासना कर महान् दुःखसागर में डूबते हैं और जो शब्द, अर्थ का अन्वयमात्र संस्कृत पढ़ कर सत्यभाषण वा पक्षपात रहित न्यायाचरणरूप धर्म का आचरण नहीं करते वे अभिमान में आरूढ़ हुए यथार्थ विद्या का वास्तव में तिरस्कार कर अविद्या (विपरीत ज्ञान अथवा अन्यायाचरण वा संस्कृत भाषा मात्र ज्ञान) को ही मानते हैं वे अत्यन्त तमोगुणरूप दुःखसागर में डूब कर निरन्तर पीड़ित होते हैं ।।

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

शब्दार्थ—(हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग) [नः] हमारे लिये [विचचक्षिरे] व्याख्यापूर्वक कहते थे (वे) [विद्यायाः] पूर्वोक्त विद्या अर्थात् शब्दार्थ सम्बन्धमात्र ज्ञान (अथवा यथार्थ दर्शन) का [अन्यत्] अन्य [एव] ही (कार्य वा फल) [आहुः] कहते थे (तथा) [अविद्यायाः] पूर्वोक्त अविद्या अर्थात् जड़ वस्तु के ज्ञान का [अन्यत्] अन्य (ही कार्य वा फल) [आहुः] कहते थे। [इति] इस प्रकार (उन) [धीराणाम्] आत्मज्ञानी विद्वानों से [तत्] उस (वचन अर्थात् विद्या व अविद्या के फल वा स्वरूप) को [शुश्रुम] हम सुनते थे (ऐसा जानो) ॥ १३ ॥

भावार्थ—अनादिगुणयुक्त चेतन (के ज्ञान) से जो उपयोग होने योग्य है वह जड़ वस्तु (के ज्ञान) से कदापि सिद्ध नहीं होता और जो जड़ वस्तु के ज्ञान से प्रयोजन सिद्ध होता है वह चेतन से नहीं। इस लिये सब मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग, विज्ञान, योग वा धर्माचरण से इन दोनों (जड़ वा चेतन) का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिये ॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳसह ।
अविद्ययामृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥१४॥

शब्दार्थ—[यः] जो (विद्वान्) [विद्याम्] पूर्वोक्त विद्या (अर्थात् शब्दार्थ सम्बन्धमात्र ज्ञान अथवा यथार्थ ज्ञान) [च] और (तत्सम्बन्धी साधन उपसाधन को) (वा) [अविद्याम्]

पूर्वोक्त अविद्या (अर्थात् जड़ प्रकृति का ज्ञान अथवा शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किये पुरुषार्थ) को [च] और (इस के उपयोगी साधन समूह को) [तत्] उन [उभयम्] दोनों को [सह] साथ ही [वेद] जानता है (वह) [अविद्यया] (शरीरादि) जड़ पदार्थ समूह (से किये पुरुषार्थ) से [मृत्युम्] मरणदुःखभय को [तीर्त्वा] उल्लंघन कर [विद्यया] आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग से उत्पन्न धर्म द्वारा यथार्थ दर्शन से [अमृतम्] मोक्षसुख को [अश्नुते] प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या (अर्थात् ज्ञान) और अविद्या (शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किये पुरुषार्थ) को उन के स्वरूप से जानकर, इनके जड़ चेतन साधक है ऐसा निश्चय कर सब शरीरादि जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा को धर्म अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए साथ ही साथ प्रयोग करते हैं वे लौकिक दुःख से छूट परमार्थ के सुख को प्राप्त होते हैं। जो जड़ प्रकृति आदि कारण वा शरीरादि कार्य न हों तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म, उपासना और ज्ञान के करने को कैसे समर्थ हो सकें। इसलिए न केवल जड़ से, न केवल चेतन से, न केवल कर्म से और न केवल ज्ञान से कोई भी धर्मादि की सिद्धि करने में समर्थ हो सकता है ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥१५॥

शब्दार्थ—[क्रतो] हे कर्म करने हारे (जीव)! (तू शरीर छूटते समय) [ओ३म्] इस ओ३म् नामवाच्य ईश्वर को [स्मर] स्मरण (पर्यालोचन अर्थात् पूरे तौर पर ध्यान) कर, [क्लिबे] अपने

सामर्थ्य के लिए (परमात्मा अथवा अपने स्वरूप का) [स्मर] स्मरण कर (तथा) [कृतम्] अपने अनुष्ठित (किये) कर्म का [स्मर] स्मरण कर। (इस संसार का) [वायुः] (शरीरस्थ धनञ्जयादिरूप) वायु [अनिलम्] कारणरूप वायु को (और कारणरूप वायु) [अमृतम्] नाश रहित (अनादि कारणरूप प्रकृति) को (धारण करता है)। [अथ] फिर (अन्त में) [इदम्] यह [शरीरम्] (नश्वर) शरीर [भस्मान्तम्] अन्त में भस्म होने वाला होता हैं ऐसा जानो ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि जैसा मृत्यु समय में चित्त की वृत्ति होती है और शरीर से आत्मा का पृथक होना होता है वैसे ही इस समय भी जानें। इस शरीर की केवल जलाने पर्यन्त क्रिया करं उसके परे (अर्थात् जलाने के पश्चात्) शरीर का कोई संस्कार न करें। वर्तमान समय में एक परमेश्वर की ही आज्ञा का पालन, उसकी उपासना और अपने सामर्थ्य को बढ़ाया करें। किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता एसा मान कर सदा धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रीति किया करें ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि
देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां
ते नम उक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—[अग्ने] हे स्वप्रकाशस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे, [देव] दिव्यस्वरूप सकलसुखदाता, [विद्वान्] सबको जानने हारे सम्पूर्ण विद्यायुक्त परमेश्वर! आप [अस्मान्] हम लोगों को

[राये] विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए [सुपथा] धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से [विश्वानि] सम्पूर्ण [वयूनानि] प्रज्ञान वा उत्तम कर्म [नय] प्राप्त कराइये। (और) [अस्मत्] हम से [जुहराणम्] कुटिलतायुक्त [एनः] पापाचरण को [युयोधि] दूर कीजिये। (इस करण हम) [ते] आप की [भूयिष्ठाम्] बहुत सी [नम उक्तिम्] सत्कारपूर्वक स्तुति [विधेम] (सदा) किया करें॥ १६॥

भावार्थ—जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते यथा-सामर्थ्य उस की आज्ञा का पालन करते और उस को ही सर्वोपरि सत्कार के योग्य मानते हैं उन को दयालु ईश्वर पापाचरणमार्ग से पृथक् कर थर्मयुक्त मार्ग में चला के विज्ञान दे कर धर्म, अर्थ, काम वा मोक्ष को सिद्धि के लिये समर्थ करता है। इस से एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ कर किसी अन्य की उपासना कदापि न करें॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म॥१७॥

शब्दार्थ—(हें मनुष्यो! जिस) [हिरण्मयेन्] (शुद्ध) ज्योतिमय [पात्रेण] पात्र (मुभ रक्षक) से [सत्यस्य] अविनाशो यर्थार्थ कारणरूप का [अपहितम्] अच्छादित (ठका) हुआ २ [मुखम्] मुख (उत्तमअङ्ग) प्रकाशित किया जाता है), [यः] जो [असी] वह [आदित्य्] प्राण वा सूर्यमण्डल में [पुरुषः] पूर्ण परमात्मा (है) [सः] वह [असौ] परोक्षरूप [अहम्] मैं (हीं) [खम्] आकाश के तुल्य सर्वत्र व्यापक [ब्रह्म] सब से

(गुण, कर्म वा स्वरूप से) बड़ा [ओ३म्] सकल जगत् का रक्षक ओ३म् नाम का वाच्य हूं ऐसा जानो ।। १७ ।।

भावार्थ—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जो मैं यहां हूं वही अन्यत्र सूर्यादि लोकों में हूं और जो अन्यत्र सूर्य्यादि लोकों में हूं वही यहां हूं। सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्ये व्यापक मुझ से भिन्न कोई बड़ा नहीं। मैं ही सब से बड़ा हूं। मेरे सुलक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से प्यारा मेरा निज का नाम "ओ३म्" यह है। जो प्रेम और सत्याचरण से मेरी शरण में आता है उसकी अन्तर्यामीरूप से मैं अविद्या का नाश कर उस के आत्मा का प्रकाश कर के उस को शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कर उस में सत्यस्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से उत्पन्न शुद्ध विज्ञान को दे और उसे सब दुःखों से पृथक् कर के मोक्ष सुख को प्राप्त कराता हूं ।।

परिशिष्ट ५

ओ३म् व्याख्या

१. *ओ३म्*—यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक ओ३म् समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आ जाते हैं, जैसे—अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तेजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है।।

(सत्य०, समु० १)।

२. एतच्च सर्वोत्तम प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति। एतेनैकेनैव नाम्ना परमेश्वरस्यानेकानि नामान्यागच्छन्तीति वेद्यम्। तद्यथा :—

अकारेण—विराडग्निविश्वादीनि।
उकारेण—हिरन्यगर्भवायुतैजसादीनि।
मकारेण—ईश्वरादित्यप्राज्ञादीनि।
नामानि बोध्यानि। (पञ्चमहायज्ञ०)

इनके अर्थ :—

विराट्—(वि) उपसर्ग पूर्वक (राजृदीप्तौ) इस धातु से क्विप प्रत्यय करने से "विराट्" शब्द सिद्ध होता है। यो विविधंनाम

चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्। विविध अर्थात् जो बहुत प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे इससे विराट् नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है ॥ (सत्य०)

विविधंचराऽचरं जगद् राजयते प्रकाशते स विराट् सर्वात्मेश्वरः। (पञ्च०)

अग्निः— (अञ्चु गतिपूजनयोः)—अग, अगि, इण् गत्यर्थक धातु हैं इनसे 'अग्नि' शब्द सिद्ध होता है।

गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति। पूजनं नाम सत्कारः। योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येतिवा सोऽयमग्निः—जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम "अग्नि" है। (सत्य०)।

अंच्यते प्राप्यते सत्क्रियते वा वेदादिभिः शास्त्रैर्विद्वद्भि श्चेत्यग्निः परमेश्वरः। (पञ्च०)।

विश्वः—(विश प्रवेशने) इस धातु से "विश्व" शब्द सिद्ध होता है। विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः स "विश्वः" ईश्वरः। जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इन सब में व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है इसलिए उस परमेश्वर का नाम "विश्व" है। (सत्य०)।

विष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् स "विश्वः"। यद्वा विष्टोस्ति प्रकृत्यादिषु यः स "विश्वः"। (पञ्च०)।

इत्यादि नामों का ग्रहण अकार मात्रा से होता है।

हिरण्यगर्भः—"ज्योतिर्वै हिरण्यं" तेजो वै हिरण्यमित्यंतरेये

शतपथे च ब्राह्मणे—यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्ति-निमित्तमधिकरणं स "हिरण्यगर्भः" जिसमें सूर्यादि तेज वाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते अथवा जो सूर्यादि तेजस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवास स्थान है इससे उस परमेश्वर का नाम "हिरण्यगर्भ" है। (सत्य०)।

इसमें यजुर्वेद का प्रमाण है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥
यजु० १३।४॥

(इस मन्त्र के अर्थ के लिए देखो परिशिष्ट २ पृष्ट १५४)

इत्यादि स्थलों में हिरण्यगर्भ से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है। (सत्य०)।

हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य, तथा सूर्य्यादीनां तेजसां यो गर्भोऽधिष्ठानं स हिरण्यगर्भः अत्र प्रमाणम्-ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेषोमृतं हिरण्यम्। श० का० कां० ६, अ० ७, बा० १, ०२। यशो वै हिरण्यम्। ऐ० प० ७, खं० १८॥

(पञ्च०)

वायु—(वा गतिगन्धनयोः) इस धातु से "वायु" शब्द सिद्ध होता है। (गन्धनं हिंसनम्)—यो वातिचराऽचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स "वायुः"—जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता है और सब बलवानों से बलवान् है इससे उस ईश्वर का नाम "वायु" है। (सत्य०)।

यो वाति जानाति धारयत्यनन्तबलत्वात् सर्वं जगत् स वायुः। स चेश्वर एव भवितुमर्हति नान्यः। इसमें यजुर्वेद का प्रमाण है—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।
तदेवशुक्रं तद् ब्रह्म ताआपः स प्रजापतिः ॥
यजु० ३२ । १ ॥

अर्थ—उसी परमेश्वर के अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आप वा प्रजापति (इत्यादि) नाम हैं ॥

इति मन्त्रवर्णादर्थाद् ब्रह्मणोवायु संज्ञास्ति । (पञ्च०) ।

तैजस—(तिज निशाने) इस धातु से "तेजः" और इससे तद्धित करने से "तैजस्" शब्द सिद्ध होता है। जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है इससे उस ईश्वर का नाम "तैजस" है। (सत्य) ।

सूर्य्यादीनां प्रकाशकत्वात्स्वयंप्रकाशत्वात् तैजस ईश्वरः ।
(पञ्च०) ।

इत्यादि नामों का ग्रहण उकार मात्रा से होता है।

ईश्वर—(ईश ऐश्वर्ये) इस धातु से "ईश्वर" शब्द सिद्ध होता है। य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स "ईश्वरः"—जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम "ईश्वर" है। (सत्य०) ।

ईष्टेऽसौ सर्वशक्तिमान् न्यायकारीश्वरः। (पञ्च०) ।

आदित्य—(दो अवखण्डने) इस धातु से "अदिति" और इससे तद्धित करने से "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है। न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः, अदितिरेव "आदित्यः"। जिसका

विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की "आदित्य" संज्ञा है। (सत्य०)।

अविनाशित्वादादित्यः परमात्मा। (पञ्च)।

प्राज्ञः—(ज्ञा अवबोधने) "प्र" पूर्वक इस धातु से "प्रज्ञ" और इससे तद्धित करने से "प्राज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स "प्रज्ञः", प्रज्ञ एव "प्राज्ञः"। जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराऽचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है इससे ईश्वर का नाम "प्राज्ञ" है।
(सत्य०)।

प्रजानाति सकलं जगदिति प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञश्च परमात्मैवेति।
(पञ्च०)।

इत्यादि नामों का ग्रहण मकार मात्रा से होता है।

जैसे एक एक मात्रा से तीन तीन अर्थ यहाँ व्याख्यात किए हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते हैं। (सत्य०)।

३. मनुस्मृति का प्रमाण :—

अ उ, म् एतत्त्रयं मिलित्वा ओ३म् इत्यक्षरं भवति। यथाह मनु :—(पञ्च०)

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वारितीति च॥
मनु० २। ७६॥

अर्थ—अ, उ, म् तीन अक्षर मिलकर 'ओ३म्' बनता है। जैसा कि मनु ने कहा है :—

प्रजापति ब्रह्मा ने तीनों वेदों से यह अ, उ वा म् (३ अक्षर) वा भूः भुवः वा स्वः (तीन व्याहृति) सारूप दुहा है।

४. *वैदिक प्रमाण :—*

(क) हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापहितं मुखम् ।
योऽसावदित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।
ओ३म् खं ब्रह्म ॥ यजु ४० । १७ ॥

इस मन्त्र के शब्दार्थ वा भावार्थ के लिए देखो परिशिष्ट ४ पृष्ट १८० ।

"ओ३म्" — योऽवति सकलं जगत्तदाख्या (वे० भा०) अवतीत्योम्—रक्षा करने से "ओ३म्" परमात्मा का नाम है ।
(सत्य०)

खम्—आकाशवद्व्यापकम्—अकाशमिव व्यापकत्वात् खम्—आकाशवत् व्यापक होने से "खम्" ब्रह्म को कहते हैं ।

ब्रह्म— सर्वेभ्यो गुणकर्मस्वरूपतो बृहत्—सर्वेभ्यो बृहत्वात् "ब्रह्म"—सबसे (गुण, कर्म और स्वरूप में) बड़ा होने से "ब्रह्म" परमात्मा का नाम है ।

(ख) वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥
यजु० ४० । १५ ॥

इस मन्त्र के शब्दार्थ वा भावार्थ के लिये देखो परिशिष्ट ४ पृष्ठ १७८ ।

५. *छान्दोग्य उपनिष्द् के प्रमाण :—*

(क) ओमित्येतदक्षरमुद्गोथमुपासीतोमिति ह्यु्द्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥
छान्दोग्य उप० । प्रपा० १ । खं० १ । मं० १ ॥

अर्थ—ओ३म् जिस का नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उस की उपासना करनी योग्य है । (सत्य०)

अवतीति ओ३म्, नक्षरतीत्यक्षरम्, उद्गीयतेत्युद्गीथः। 'ओ३म्' यह परमात्मा का मुख्य नाम है जो अविनाशी है उसी को उद्गीथ अर्थात् वाणी का आधार मान कर उपासना करे क्योंकि इस नाम से ही परमात्मा का गायन करते हैं उस का यह उपव्याख्यान अर्थात् विशेष व्याख्यान है॥

(ख) यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवँ सामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविष्य देवा अमृता अभया अभवन्॥

छान्दोग्य प्रपा० १। खं० ४। मं० ४॥

अर्थ—जब ब्रह्मवेत्ता ऋग्वेद को प्राप्त होता है तब ओङ्कार का ही उच्चारण करता है इसी प्रकार साम तथा यजुर्वेद का अध्ययन करता हुआ प्रथम ओङ्कार का ही उच्चारण करता है, यही निश्चय कर के ब्रह्म है जो अक्षर (अविनाशी), अमृत, अभय है, उस ब्रह्म में प्रवेश करके विद्वान मृत्यु के भय से रहित हो जाते हैं॥

(ग) उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति॥

छान्दोग्य १। ५। १॥

आदित्य, उद्गीथ वा प्रणव 'ओ३म्' ही हैं।

६. *माण्डूक्य उपनिषद् के प्रमाण :—*

(क) ओमित्येतदक्षरमिदँ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्,
भूतभवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥

माण्डूक्य श्लोक १॥

ओमित्येतद्ध्यस्यनामास्ति तदक्षरम्। यन्नक्षीयते कदाचिद्य-

च्चराचरं जगदश्नुते व्याप्नोति तद् ब्रह्मैवास्तीति विज्ञेयम् । अस्यैव सर्वैर्वेदादिभिः शास्त्रैः सकलेन जगत् वोपगतम् व्याख्यानं मुख्यतया क्रियते ॥

अर्थ—अविनाशी और सर्वव्यापक परमात्मा का नाम ओ३म् है। सब वेद, शास्त्र वा सकल जगत् उसी परमात्मा का मुख्यतया व्याख्यान करते हैं। वह ओं भूत, भविष्यत् वा वर्तमान तीनों कालों में विराजमान रहता है तथा तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता हैं उन सब व्यवहारों को यथावत् जानता है तथा सब कालों में जो जगत् विद्यमान रहता है उन सब का अधिष्टाता अर्थात् स्वामी है। और काल से भी ऊपर सदा विराजमान रहता है ॥

(ख) सो ऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा ।
मात्राश्चपादा अकार उकारो मकार इति ॥
श्लोक ८ ॥

अर्थ—वह परमात्मा अध्यक्षर ओं का वाच्य है। उसी की तीन अधिमात्राएँ 'अ', 'उ' वा 'म्' उसके पाद रूप हैं।

(ग) जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्ते-
रादिमत्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामानदिश्च
भवति य एवं वेद ॥ श्लोक ९ ॥

अर्थ—'अ' प्रथम मात्रा है जो सब में व्यापक है और आदिम है उस से जागरितस्थानी (बाहर के सब जगत् के कार्य करने वाला) सर्वव्यापक ब्रह्म जो वैश्वानर संज्ञक है का बोध होता है। जो 'अ' मात्रा से ब्रह्म को सर्वव्यापक वा सबका आदिमूल जानता है वह सब कामनाओं को प्राप्त होता है और उसका यह प्रथम पाद अथवा सीढ़ी समझो ॥

(घ) स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादु-
भयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञान सन्तति समानश्च
भवति नास्या ब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥

श्लोक १० ॥

अर्थ—'उ' दूसरी मात्रा है जो उत्कर्ष वाली अथवा बीच में होने से ज्ञान का विस्तार करती है। उससे स्वप्नस्थानी तैजस संज्ञक परमात्मा है अर्थात् स्वयं प्रकाशस्वरूप और सबका प्रकाश करने वाला है। उसको ऐसा जो जानता है वह ब्रह्मवेत्ता कुल में ही उत्पन्न होता है और उसके कुल में कोई अब्रह्मवित् उत्पन्न नहीं होता ॥

(ङ) सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा।
मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥

श्लोक ११ ॥

अर्थ—तीसरी मात्रा 'उ' अन्तिम में मापक होने से और लय स्थान होने से ज्ञान का प्रकाशक है। जो इस प्रकार सुषुप्तस्थानी प्राज्ञ संज्ञक परमात्मा को जानता है वह ज्ञान से युक्त हो जाता है ॥

(च) अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत,
एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद,
य एव वेद ॥

श्लोक १२ ॥

अर्थ—वह परमात्मा जो ओङ्कार है मात्रा रहित वा अपरिच्छिन्न है वह शिव है, अद्वैत है जो इस प्रकार उसको जानता है वह उसमें अपने संस्कृत मन द्वारा प्रवेश कर जाता है ॥

७. *प्रश्नोपनिषद् के प्रमाण—*

(क) अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ। स यो ह वै तद्भगवन् मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥

प्रश्न ५। श्लोक १ ॥

अर्थ—अब गार्ग्य के प्रश्नानन्तर शिवि ऋषि के पुत्र सत्यकाम नें पिप्लाद ऋषि से पूछा कि मरणपर्य्यन्त ओ३म् की उपासना करनें वाला किस लोक को जीतता है अर्थात किस अवस्था को प्राप्त होता है ॥

(ख) तस्मै स होवाच। एतद्वै सत्यकाम। परञ्चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥

५। २ ॥

अर्थ—उस से वह ऋषि बोला। हे सत्यकाम जो पर अपर ब्रह्म है वही निश्चय कर के ओ३म् है (ओङ्कार) है। विद्वान मनुष्य ओङ्कार को ही साधन बना कर 'पर' या 'अपर' दोनों में से किसी एक रूप को प्राप्त कर लेता है ॥

(ग) स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव सवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ५। ३ ॥

अर्थ—जो 'अ' एक मात्रा का ध्यान कर के ईश्वर की उपासना करता है व उस से शीघ्र साक्षातकार वाला हो कर जगत् में प्राप्त होता है। उस को ऋग्वेद की ऋचाएं मनुष्य लोक को प्राप्त कराती हैं। वह उस मनुष्य लोक में तप ब्रह्मचर्य्य और श्रद्धा से युक्त हुआ २ परमात्मा की अनन्त महिमा को अनुभव करता है ॥

(घ) अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते स सोमलोकं, स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ।। ५ । ४ ।।

अर्थ—जो 'अ' वा 'उ' इन दो मात्राओं का मन से ध्यान करता है वह यजुर्वेद द्वारा उपासना से अन्तरिक्ष में सोम लोक को प्राप्त होता है और वहां से फिर मनुष्य लोक में लौट आता है ।।

(ङ) यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत, स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिमुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सोमभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं । स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते, तदेतौ श्लोकौ भवतः ।। ५ । ५ ।।

अर्थ—जो फ़िर तीन मात्राओं द्वारा परम पुरुष का ध्यान करताहै । वह ज्ञानरूपी तेजोमय प्रकाश से सम्पन्न हो जाता है । जैसे सर्प अपनी कैंचुली को छोड़ देता है वैसे वह उपासक पाप से मुक्त होकर सामवेद द्वारा उपासना से ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है । उस से वह जीव से ऊपर परमपुरुष परमात्मा को देखता है । इस विषय में निम्नलिखित दो श्लोक हैं ।।

(च) तिस्रोमात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ।। ५ । ६ ।।

अर्थ—परस्पर सम्बद्ध तीन मत्राएं ठीक प्रकार प्रयुक्त न की गई (ब्रह्म के ध्यान से रहित केवल शब्दरूप से प्रयुक्त हुई) मनुष्य को मरणधर्मा बनाती हैं अर्थात् जीव मोक्ष को प्राप्त नहीं होता ।

और बार २ जन्म लेता है। किन्तु वे ही ठीक प्रयुक्त हुई २ कर्मों से जीव को चलायमान नहीं करती (अर्थात् कर्मोपसना से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान का प्रकाश कराती हैं) और मोक्ष को प्राप्त कराती हैं ॥

(छ) ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्। यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥

५।७॥

पुरुष ऋग्वेद द्वारा इस (मानव) लोक को, यजुर्वेद द्वारा अन्तरिक्ष (सूक्ष्म लोक) को और सामवेद द्वारा उस सूर्य्य लोक अर्थात् ब्रह्म लोक को जिस को ज्ञानी लोग जानते हैं उसको प्राप्त होता है। उस मोक्ष को विद्वान ओङ्कार के ही अवलम्बन से प्राप्त करता है। यह वह स्थान (मार्ग) है जो शान्ति का देने वाला है वृद्धावस्था के दुःख से रहित है, मृत्यु से रहित है और भयरहित है और सर्वोत्तम है ॥

८. *कठोपनिषद् का प्रमाण :—*

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

कठ०, वल्ली २, म० १५ ॥

सब वेद वा धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिस का कथन और मान्य करते हैं और जिसकी प्राप्ति की इच्छा कर के ब्रह्मचर्याश्रम करते हैं उस का नाम "ओ३म्" है। (सत्य०)

९. *मुण्डक उपनिषद् के प्रमाण :—*

(क) **प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।**
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

मुण्डक २ । २ । ४ ॥

जिज्ञासु को उचित है कि वह प्रणव रूप धनुष को लेकर संस्कृत मन (शुद्ध अन्तःकरण) द्वारा विषयरूप प्रमाद से रहित ऐकाग्रचित्त होकर ब्रह्मरूप लक्ष्य का आत्मा रूपी बान से वेधन करे ॥

(ख) **अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाडयः स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः । ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ २ । २ । ६ ॥**

जैसे रथ की नाभि में भिन्न-भिन्न अरे जड़े होते हैं और जैसे हृदय में भिन्न-भिन्न नाड़ियां संहत होती हैं वैसे अनेक रूपों में प्रकट होने वाला (अनेक गुणयुक्त) भगवान् हमारे हृदय में विराजमान विचरता है। उस अन्धकार से परे परमात्मा का "ओ३म्" इस परमात्मावाचक पद से ध्यान करो इसी से तुम्हारा कल्याण होगा ॥

१०. *तैत्तिरीय उपनिषद् का प्रमाण :—*

ओमितिब्रह्म, ओमितीदꣳसर्वम्, ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति, ओमिति सामानि गायन्ति, ओंशोमिति शस्त्राणि शंसन्ति, ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रति गृणाति, ओमिति ब्रह्मा प्रसौति, ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति, ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥

तैत्तिरीप उप०, शिक्षा व०, अनु० ८, श्लोक १ ॥

'ओ३म्' यह ब्रह्म है, 'ओ३म्' इस ब्रह्म के वाचक परमात्मा

से यह सब जगत् व्याप्त है, संसार 'ओ३म्' की अनुकृति है, शिष्य 'ओ३म्' कह कर ही गुरु को पाठ सुनाता है, 'ओ३म्' से ही उद्गाता लोग सामगान करते हैं, शास्त्रपाठ भी 'ओ३म्' से आरम्भ और शमोम् से समाप्त होता है, अध्वर्यु 'ओ३म्' कह कर यजुर्वेद का पाठ करता है, ब्रह्मा 'ओ३म्' से परमात्मा की स्तुति करता है और 'ओ३म्' कह कर ही अग्निहोत्र प्रारम्भ करने की अनुज्ञा देता है, ब्राह्मण प्रवचन करते समय 'ओ३म्' का ही प्रयोग करता है और कहता है कि मैं ब्रह्म को प्राप्त होऊँ, इस प्रकार वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥

११. श्वेताश्वतर उपनिषद् का प्रमाण :—

(क) वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्त्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः ।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥
श्वे० १ । १३ ॥

अर्थ—जैसे अग्नि का स्वरूप अपनें योनि अर्थात् प्रादुर्भाव स्थान (काष्ठ) में रहते हुए नहीं दीखता तथापि काष्ठ में अग्नि के चिह्न का नाश भी नहीं है किन्तु उसको दो काष्ठों के निर्मन्थन से देख सकते हैं। इसी प्रकार परमात्मा हमारे देह में वर्त्तमान् हैं परन्तु ओङ्कार से (ओ३म् के अर्थपूर्वक जाप से) मन में वह प्रकाशित होता है ॥

(ख) स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ॥
श्वे० १ । १४ ॥

अर्थ—परमात्मा का साक्षात्कार चाहने वाला जिज्ञासु अपने

देह को अधरारणि और ओङ्कार को उत्तरारणि कल्पना करके ध्यानरूपी मंथन के अभ्यास से काष्ठ में प्रच्छन्न अग्निवत् परमात्मा को देखें ॥

१२. *योगाशास्त्र का प्रमाण :—*

(क) तस्य वाचकः प्रणवः ॥

योग० १ । १ । २७ ॥

तस्येश्वरस्य प्रणव ओङ्कारो वाचकोस्ति, वाच्येश्वरः ।

भा० । भू० ॥

अर्थ—उस परमेश्वर का वाचक अर्थात् कथन करने वाला प्रणव अर्थात् 'ओकार' (ओ३म्) है और परमेश्वर वाच्य है ॥

जो ईश्वर का ओंकार नाम है सो पिता पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं उनमें 'ओंकार' सबसे उत्तम है, इसी लिए इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और इसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो, जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेमभक्ति सदा बढ़ती जाए ॥

(ख) तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ योग० १ । १ । १२ ॥

प्रणव (ओ३म्) का अर्थपूर्वक (अर्थात् उसके अर्थों का विचार करके) जप करने (अर्थात् वाणी से उच्चारण करने अथवा मन में स्मरण करने) से चित्त एकाग्र हो जाता है और हृदय में परमात्मा का प्रकाश होता है ॥

(ग) ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥
योग० १ । १ । २१ ॥

तब (उक्त रीति से 'ओ३म्' का अर्थपूर्वक जप करने से) उस अन्तर्यामी चेतन (परमात्मा) की प्राप्ति और अन्तरायों (अर्थात् अविद्यादि क्लेशों तथा रोगरूप विघ्नों) का नाश हो जाता है ॥

१३. गीता के प्रमाण :—

(क) ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा ॥
गीता १७ । २३ ॥

अर्थ—'ओ३म्', 'तत्', 'सत्' यह तीन प्रकार का ब्रह्म (परमात्मा) के लिये शब्द व्यावहार कहा गया हैं। उस ब्रह्म ने आदि (सृष्टि के आरम्भ) में ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी ऋषि), वेद वा यज्ञ उत्पन्न किये ॥

(ख) तस्मादोमत्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रिया ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥
गीता १७ । २४ ॥

अर्थ—इस लिये ब्रह्मवादी (वेद का गायन करने वाले वेदोपदेष्टा) 'ओ३म्' के उच्चारण से ही सब शास्त्रोक्त यज्ञ, दान वा तप सदा प्रारम्भ करते कराते हैं ॥

(ग) ओ३म् इति एतदक्षरम् ब्रह्म — … — ॥
गीता ८ । १३ ॥

अर्थ—'ओ३म्' यह एक अक्षर (पद) ही ब्रह्म है ॥

१४. *सङ्कल्प प्रमाण* :—

"ओंतत् सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्ट-विंशतितमे कलियुगे काले प्रथमचरणेऽमुक-संवत्सरायनर्तुमास-पक्ष दिन नक्षत्र लग्नमुहूर्तेऽत्रे दं कृतं क्रियते च" इत्याबालावृद्धैः प्रत्यहं विदित्वादितिहासस्यास्य सर्वत्रार्यावर्त्तदेशे वर्त्तमान-त्वात्सर्वत्रैकरसत्वात्अशक्येयं व्यवस्था विचालयितुमिति विज्ञायताम् ॥

अर्थात् आर्य्य लोग नित्यप्रति ओं तत्सत् परमेश्वर के इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण करके उक्त संकल्प पढ़ते और कार्यों का आरम्भ करते और परमेश्वर का ही नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं ॥

१५. *जपजी साहब का प्रमाण*: —

ओं सत्य नाम कर्त्ता पुरुष निर्भौ निर्वैर
अकालमूर्त अजोनि सहभंगुरु प्रसाद जाप आदि
सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच ॥
(जपजी पौड़ी १) ॥

अर्थ—जिसका ओं सत्य नाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और वैर राहित अकालमूर्त्ति, काल वा योनि में न आने वाला प्रकाशमान है उस का जप गुरु की कृपा से कर वह परमात्मा आदि में सच था, जुगों के आदि में सच, वर्त्तमान में सच और होगा भी सच ॥

परिशिष्ट ६

ईश्वर स्तुति प्रार्थना के भजन

भजन १ (यज्ञ प्रार्थना)

पूज्यनीय प्रभो हमारे भाव उज्जवल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिये ॥ १ ॥
वेद की बोलें ऋचायें सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक सागर से तरें ॥ २ ॥
अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चला कर लाभ दें संसार को ॥ ३ ॥
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥ ४ ॥
कामाना मिट जाय सब से पाप अत्याचार की।
भावनायें पूर्ण होवें यज्ञ से नर नार की ॥ ५ ॥
लाभकारी हों हवन हर जीवधारो के लिये।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये ॥ ६ ॥
स्वार्थभाव मिटे हमारा प्रेमपथ विस्तार हो।
इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥ ७ ॥
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणारूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥ ८ ॥

भजन २

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये।
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिये ॥ टेक ॥
कीजिये ऐसो अनुग्रह हम पै हे परमात्मा।
हों सभासद इस सभा के सबके सब धर्मात्मा ॥ १ ॥

हो उजाला सबके मन में ज्ञान के प्रकाश से।
और अन्धेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से॥ २॥
खोटे कर्मों से बचें और तेरे गुण गावें सभी।
छूट जावें दुःख सारे सुख सदा पावें सभी॥ ३॥
सारी विद्याओं को सीखें ज्ञान से भरपूर हों।
शुभ कर्म में होवें तत्पर दुष्ट गुण सब दूर हों॥ ४॥
यज्ञ हवन से हो सुगन्धित अपना भारतवर्ष देश।
वायु जल सुखदाई होंव जायें मिट सारे क्लेश॥ ५॥
वेद के प्रचार में होवें सभी पुरुषार्थी।
होवें आपस में प्रीति और बनें परमार्थी॥ ६॥
लोभी कामी और क्रोधी कोई भी हम में न हो।
सर्व व्यसनों से बचें और छोड़ देवे मोह को॥ ७॥
अच्छी संगत में रहें और वेद मारग पर चलें।
तेरे ही होवें उपासक और कुकर्मों से बचें॥ ८॥
कीजिये हम सबका हृदय शुद्ध अपने ज्ञान से।
मान भक्तों में बढ़ाओ अपने भक्ति दान से॥ ८॥

भजन ३

हुआ ध्यान में ईश्वर के जो मगन, उसे कोई क्लेश लगा न रहा।
जब ज्ञान की गङ्गा में नहाया, तो मन में मैल ज़रा न रहा॥
परमात्मा को जब आत्मा में, लिया देख ज्ञान की आंखों से।
प्रकाश हुआ मन में उसके, कोई उससे भेद छिपा न रहा॥
पुरुषार्थ हो इस दुनिया में, सब कामना पूरी करता है।
मन चाहा फल उसने पाया जो आलसी बनके पड़ा न रहा॥
दुःखदायी हैं सब शत्रु हैं यह विषय हैं जितने दुनियां के।
वही पार हुआ भवसागर से, जो जाल में इनके फंसा न रहा॥

यहाँ वेद विरुद्ध जब मत फैले, प्रकृति की पूजा जारी हुई।
जब वेद की विद्या लुप्त हुई, फिर ज्ञान का पांव जमा न रहा ।।
यहां बड़े बड़े महाराज हुए, बलवान् हुए विद्वान् हुए।
पर मौत के पंजे से "केवल" कोई दुनियां में आके बचा न रहा ।।

भजन ४
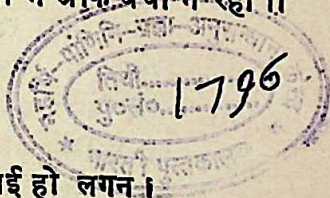
विश्वपति के ध्यान में जिसने लगाई हो लगन।
क्यों न हो उसको शांति क्यों न हो उसका मन मगन ।। १ ।।
काम क्रोध लोभ मोह शत्रु हैं सब महाबली।
इनके हनन के वासते जितना हो तुझसे कर यतन ।। २ ।।
ऐसा बना स्वभाव को चित्त की शांति से तू।
पैदा न हो ईर्षा की आंच दिल में करे कहीं जलन ।। ३ ।।
मित्रता सब से मन में रख त्याग के वैर भाव को।
छोड़ दे टेढी चाल को ठीक कर अपना तू चलन ।। ४ ।।
जिससे अधिक न है कोई जिसने रचा है यह जगत।
उसका ही रख तू आश्रय उसकी ही तू पकड़ शरण ।। ५ ।।
छोड़ के राग द्वेष को मन में तू उसका ध्यान धर।
तुझ पै दयालु होवेंगे निश्चय है यह परमात्मन् ।। ६ ।।
आप दयास्वरूप हैं आप ही का है आश्रय।
कृपा की दृष्टि कीजिये मुझ पै हो जब समय कठिन ।। ७ ।।
मन में मेरे हो चांदना मोक्ष का रास्ता मिले।
मार के मन जो 'केवला' इन्द्रियों को करे दमन ।। ८ ।।

भजन ५

जय जय पिता परम आनन्द दाता।
जगदादिकारण मुक्ति-प्रदाता ॥ १ ॥
अनन्त और अनादि विशेषण हैं तेरे।
सृष्टि का स्रष्टा तू धर्ता संहाता ॥ २ ॥
सूक्ष्म से सूक्ष्म, तू है स्थूल इतना।
कि जिसमें यह ब्रह्माण्ड सारा समाता ॥ ३ ॥
मैं लालित व पालित हूं पितृ स्नेह का।
यह प्राकृत सम्बन्ध है तुझसे ताता ॥ ४ ॥
करो शुद्ध निर्मल मेरी आत्मा को।
करूं मैं विनय नित्य सायं व प्रातः ॥ ५ ॥
मिटाओ मेरे भय को आवागमन के।
फिरूं ना जन्म पाता और बिलबिलाता ॥ ६ ॥
बिना तेरे है कौन दीनन का बन्धु।
कि जिसको मैं अपनी अवस्था सुनाता ॥ ७ ॥
'अमो' रस पिलाओ कृपा करके मुझको।
सर्वदा रहूं तेरी कीर्ति को गाता ॥ ८ ॥

भजन ६

आरती

ओ३म् जय जगदीश हरे, पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के सङ्कट, क्षण में दूर करे ॥ १ ॥
जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ २ ॥
मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूं जिसकी ॥ ३ ॥

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तरयामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी ॥ ४ ॥
तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्ता ॥ ५ ॥
तुम हो एक अगोचर, सब के प्राण पति।
किस विध मिलूं दयामय, तुम को मैं कुमति ॥ ६ ॥
दीन बन्धु दुःख हर्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥ ७ ॥
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ ८ ॥

भजन ७

हैं दीन-बन्धु स्वामी, सुनलो पुकार मेरी।
जीवन न बीत जाय, अबतो कृपा हो तेरी ॥
निर्बल हुं मैं तू जाने, कैसे लगूं ठिकाने।
नौका पड़ी भँवर में है पाप ने जो घेरी ॥
कब से भटक रहा हुं, इक सोच में पड़ा हुं।
कैसे किनारा पाऊँ, हो जब दया न तेरी ॥
दुःख दर्द की घटाऐं चारों तरफ़ से आऐं।
पापों की हैं सज़ाऐं, बिगड़ी दशा है मेरी ॥
मैं जानूं अपनी गाथा, तुझ से कहाँ छुपाता।
मानूं मेरे विधाता, जो कुछ हैं भूल मेरी ॥
लाखों जन्म गँवाए, आवागमन में सारे।
मँगल-मिलन में तेरे, हो नाथ अब न देरी ॥
जीवन के दिन हैं जितने, बाकी रहे हैं जितने।
गुज़रें तेरी ही धुन में, यह कामना है मेरी ॥

भजन ८

(ओ३म् ध्वज गीत)

जयति ओम् ध्वज व्योम विहारी।
विश्व प्रेम प्रतिमा अति प्यारी।
सत्य सुधा बरसाने वाला, स्नेह लता सरसाने वाला।
सौम्य सुमन विकसाने वाला।
विश्व विमोहक भव भयहारी॥ जयति ओम्...
इसके नीचे बढ़े अभय मन, सत्य पथ पर सब धर्म धुरी जन।
वैदिक रवि का हो शुभ उदयन।
आलोकित होवें दिशि सारी॥ जयति ओम्...
इससे सारे क्लेश शमन हों, दुर्मति दानव द्वेष दमन हों।
अति उज्वल अति पावन मन हों।
प्रेम तरंग वहे सुखकारी॥ जयति ओम्...
इसी ध्वजा के नीचे आकर, ऊंच नीच का भेद भूलाकर।
मिले विश्व मुद मंगल गाकर।
पन्थाई पाखण्ड विसारी॥ जयति ओ३म्...
इसी ध्वज को लेकर कर में, भर दे ज्ञान घर घर में।
शुभग शान्ति फैले जग भर में।
मिटे अविद्या की अंधियारी॥ जयति ओ३म्...
विश्व प्रेम का पाठ पढ़ावें, सत्य अहिंसा को अपनावें।
जग में जीवन ज्योति जगावें।
त्याग पूर्ण हो वृत्ति हमारी॥ जयति ओ३म्...
आर्य जाति का सुयश अक्षय हो, आर्य ध्वजा की अविचल जय हो।
आर्य जनों का ध्रुव निश्चय हो।
आर्य बनावें वसुधा सारी॥ जयति ओ३म्...

भजन ६

(ओ३म् के झण्डे का दूसरा गीत

विजयी विश्व ओ३म् का प्यारा,
झण्डा ऊंचा रहे हमारा ।।

सदा शक्ति बरसानें वाला,
प्रेम सुधा सरसाने वाला,
वीरों को हर्षानें वाला,
आर्य जाति का तन मन सारा,
झण्डा ऊंचा रहे हमारा ।।

इस झण्डे के नीचे निर्भय,
लख कर जोश बढ़े क्षण क्षण में,
कांपे शत्रु देख कर मन में,
मिट जाये भय संकट सारा,
झण्डा ऊंचा रहें हमारा ।।

आओ प्यारे वीरो आओ,
वैदिक धर्म पर बलि बलि जाओ,
एक साथ सब मिल कर गाओ,
प्यारा आर्यवर्त हमारा,
झण्डा ऊंचा रहे हमारा ।।

शान न इस की जानें पायें,
चाहे जान भली ही जायें,
विश्व विजय कर के दिखलायें,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा,
झण्डा ऊंचा रहे हमारा ।।

भजन १०
(पञ्जबी भीत)

ध्यान ईश्वर वल न लाना, ए नादानी हुन्दी ए ।
नरक पानें वालियाँ दी, ए निशानी हुन्दी ए ।।

दिल नू पापा दे विच लाना,
मरदी वारी पच्छों ताना ।
एहो पापी आत्मा नूं,
परेशानी हुन्दी ए ।। ध्यान०...

जोड़े ईश्वर नाम ध्यावन,
ओहो भक्ति दा रस पावन ।
मरण वेले भाइयो उन्हां नूं,
आसानी हुन्दी ए ।। ध्यान०...

ओम नाम दा धनुष बना के,
आत्मा दा तीर चला के ।
ब्रह्म नूं विंधना निरालस,
एहो भक्ति हुंन्दी ए ।। ध्यान०...

करना ओ३म् दा नित जाप,
ओदे अर्थां दा वी विचार ।
एहो समाधि सिद्धि दी,
रीति हुन्दी ए ।। ध्यान०...

करना कम सारे निष्काम,
दुनिया तों हो के उपराम ।
करम योगियां दी एहो,
हो निशानी हुन्दी ए ।। ध्यान०...

मन्त्र सूची

—:o:—

प्रतीक	पृष्ट
अग्निमीडे पुरो०	७
अग्निना रयिमश्न०	८
अग्निः पूर्वेभिः०	९
अग्निर्होता कविः०	१०
अग्ने नय सुपथा०	१६०, १७९
अग्ने व्रतपते व्रतं०	१२३
अतो देवा अवन्तु०	१५
अदितिर्द्यौरदिति०	२२
अनेजदेकं मनसो०	१६८
अन्धतमः प्रविशन्ति ये अविद्यां०	१७५
अधमः प्रविशन्ति० ये असम्भतिम०	१७३
अन्यदेवाहुर्विद्याया०	१७७
अन्यदेवाहु सम्भवात्०	१७४
अहानि शं भवन्तु०	९४
आयुर्यज्ञेन कल्पतां०	८१
आवदंस्त्वं शकुने०	५८
इन्द्रो विश्वस्प राजति०	९२
इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं०	१३१
इषे पिन्वस्व०	१०३
ईशा वास्यमिदं०	१६६

प्रतीक	पृष्ट
उद्गातेव शकुने	५८
उद्वयं तमसस्परि०	१४६
उदीची दिक्०	१४३
उदुत्यं जातवेदसं०	१४७
उशिगसि कविः०	८६
उपहूता इह गाव०	१२५
ऊर्ध्वादिग्	१४५
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो०	२१
ऋजुनीति नो वरुणो०	२४
ऋषिर्हि पूर्वजा०	३३
ऋचं वाचं प्रपद्ये०	७०
ऋतं च सत्यञ्च०	१३७
किँस्विदासी०	१०५
किँस्विद्वनं क उ०	११०
कुर्वन्नेवेह कर्माणि०	१६७
गणानाण्त्वा गण०	१२२
गयस्फानो अमी०	४२
चतुःस्रक्तिर्नाभि०	११६
चित्रं देवानाम्०	१४८
जातवेदसे सुनवाम०	३८
त्वमस्य पारे रजसो०	१७
त्वं सोमासि सत्पति०	२५
त्वं नः सोम विश्वतो०	२५
तद्विष्णोः परमं पदं०	२६

प्रतीक	पृष्ट
त्वमसि प्रशस्यो०	३१
त्वं हि विश्वतो मुख०	४३
तन्न इन्द्रो वरुणो०	३२
तदेवाग्निस्तदादित्य०	६९, १८५
तदेजति तन्नैजति०	७९, १६९
तनूपा अग्नेऽसि०	१०६
तच्चक्षुर्देवहितं पुर०	१११, १४९
तमीशानं जगत्०	१४, १२६
तमोडत प्रथमं०	४४
तमतयो रणयन्०	४५
तेजोऽसि तेजो मयि०	७५
द्यौः शान्तिरन्तरि०	९६
दक्षिणा दिगिन्द्रो०	१४१
देवकृतस्यैनसो०	९०
देवो देवानामसि०	५४
देवो न यः पृथिवीं०	५१
दृते दृं ह मा०	६७
ध्रुवा दिग्विष्णु०	१४४
न यस्य द्यावा०	१९
न यस्य देवा देवता०	३७
नमः शम्भवाय च०	९८, १५२
न तं विदाथ य इमा०	११९
नेह भद्रं रक्षस्विने०	३३
पराणुदस्व मघवन्०	२९

प्रतीक	पृष्ट
परीत्य भूतानि परीत्य०	७७
प्रजापते न०	१५८
प्र तद्वोचेदमृतं०	६५
प्रतीचीदिग्वरुणो०	१४२
प्राची दिगग्नि०	१४०
पावका नः सरस्वति०	१२
पाहि नो अग्ने०	१६
पुरूतमं पुरूणा०	१३
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं०	१००
भग प्रणेतर्भग सत्य०	७८
भद्रं कर्णेभिः शृणु०	६६
भूर्भुवःस्वः तत्सवितुः०	१५०
भूर्भुवः स्वः सुप्रजा	१०६
भग एव भगवां०	१२१
मयीदमिन्द्र इन्द्रियं०	१२८
मा नो वधीरिन्द्र मा०	५५
मा नो महान्तमुत०	५६
मानस्तोके तनये०	५६
मृडानो रुद्रोत नो०	५०
मेधां मे वरुणो०	१३०
य इमा विश्वा०	१०२
यदङ्ग दाशुषे०	१०
यतो यतः समीहसे०	७३
यस्मान्न जातः परो०	८३
यस्मिन्नृचः साम०	१६४

प्रतीक	पृष्ट
यत्प्रज्ञानमुत चेतो०	१६२
यन्मे छिद्रं चक्षुषो०	११३
ज्जाग्रतो दूर०	११८, १६१
यस्तु सर्वाणि०	१७०
यस्मिन्तसर्वाणि भूतानि०	१७१
य ग्रत्मदा बलदा०	१२४, १५५
य प्राणतो०	१५६
या ते धामानि पर०	११२
यां मेधां देवगणाः	१३०
येन कर्मान्यपसो०	१६२
येन द्यौरुग्रा०	१५७
येनेदं भूतं भुवनं०	१६३
यो नः पिता जनित०	११७
यो विश्वस्य जगतः०	४९
वसुर्वसुपतिर्हि०	३५
वयं जयेम त्वया०	४७
वायावायाहि दर्श०	११
वायुरनिलममृतम्०	१७८
विजानीह्यार्यान्०	१८
विद्यां चविद्यां च०	१७७
विष्णोः कर्माणि पश्यत०	२८
विभूरसि प्रवाहणः०	८५
विश्वतश्चक्षुरुत०	१०७
विश्वकर्मा विमना०	११४
विश्वानि देव०	१५४

प्रतीक	पृष्ट
वेदाहमेतं पुरुषं०	७४
वैश्वानरस्य सुमतौ०	३६
शन्नो देवीरभिष्टये०	१२४
शन्नो मित्रः शं वरुणः०	५
शंनो भगः शमु नः०	३०
शं नो वातः पवतां०	९३
स्थिरा वः सन्त्वायुधा०	२७
स वज्रभृद्दस्युहा०	३९
स पूर्वया निविदा०	४६
सह नाववतु सह नौ०	६२
स पर्यगाच्छुक्रमकाय०	६५
स नो बन्धुर्जनिता०	७१, १५९
स नः वितेव सूनवे०	८४
समुद्रादर्णवादधि०	१३८
समुद्रोऽसि विश्वव्यचा०	८८
सदसस्पतिमद्भुतं०	१२९
सा मा सत्योक्तिः परि०	५२
सुमित्रिया न आप०	१०१
सुषारथिरश्वानिव०	१६५
सूर्य्याचन्द्रमसौ०	१३९
सेमं नः काममापृण०	४०
सोम गीर्भिष्ट्वा०	४१
सोम रारन्धि नो हृदि०	४२
हिरण्यगर्भः सम०	९१, १५४
हिरण्मयेन पात्रेण०	१८०

परिशिष्ट ५ क

(प्रातःकाल में ईश्वर की स्तुति प्रार्थना के ऋग्वेद के पांच मन्त्र)

१. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥
ऋ०, मं०, ७, सू० ४१, मन्त्र १ ॥

अर्थ—[प्रातः] प्रातःकाल (प्रभात वेला) में [अग्निम्] स्वप्रकाश-स्वरूप (ज्ञानस्वरूप) (तथा) [प्रातः] प्रातःकाल में [इन्द्रम्] परमैश्वर्ययुक्त, परमैश्वर्य के दाता (तथा) [प्रातः] प्रातःकाल में [मित्रावरुणा] प्राण और उदान के समान प्रिय (और सर्वशक्तिमान्) (तथा) [प्रातः] प्रातःकाल में [अश्विना] सूर्य वा चन्द्र को उत्पन्न करने वाले (उस परमात्मा) को [हवामहे] हम आह्वान करते हैं अर्थात् श्रद्धाभक्ति से उस की स्तुति करते हैं। (और) [प्रातः] प्रभातवेला में [भगम्] भजनीय तथा ऐश्वर्ययुक्त, [पूषणम्] पुष्टिकर्त्ता, [ब्रह्मणस्पतिम्] वेद, ब्रह्माण्ड वा सकलैश्वर्य के स्वामी को (तथा) [प्रातः] प्रभातवेला में [सोमम्] अन्तर्यामि प्रेरक [उत] और [रूद्रम्] दुष्टों (पापियों) को रूलाने वाले (जगदीश्वर) की [हवामहे] हम (हृदय में) आह्वान करते (अर्थात् स्तुति करते) हैं।

२. प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥
ऋ०.७।४१।२॥

अर्थ—[प्रातः] प्रभातवेला में [जितम्] जयशील, [भगम्] ऐश्वर्य के दाता, [उग्रम्] तेजस्वी, [अदितेः] अन्तरिक्ष के [पुत्रम्] पुत्र अर्थात् सूर्य की उत्पत्ति करने वाले, (और) [यः] जो [विधर्ता] विशेष कर के (सूर्यादि लोकों का) धारण करने वाला

(है उस को) [वयम्] हम [हवामहे] (हृदय में) आह्वान करते हैं। (जो) [आध्रः] सब ओर से धारण कर्त्ता, [यंचित्] जिस किसी का भी [मन्यमानः] जानने हारा, [तुरश्चित्] दुष्टों का भी दण्ड दाता, [राजा] सब का प्रकाशक (है और) [यम्] जिस [भगम्] भजनीयस्वरूप (वा ऐश्वर्यस्वरूप) को [चित्] भी [भक्षि] मैं सवन करता हूं (उस परमात्मा ने) [इति] इस प्रकार [आह] हम को उपदेश दिया है (कि तुम मेरी ही उपासना किया करो और मेरी ही आज्ञा पर चला करो) ॥

३. भगप्रेणतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भगप्रणो जनय गोभिरश्वैर्भग प्रनृभिनृवन्त स्याम ॥

ऋ० ४। ४१। ३॥

अर्थ – इस मन्त्र के अर्थ के लिये देखो पृष्ठ ७८॥

४. उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अन्हाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥

ऋ० ७। ४१। ४॥

अर्थ—[मघवन्] हे परमपूजित, सकलैश्वर्ययुक्त वा असंख्य धन के देने हारे जगदीश्वर! [वयम्] हम लोग (आप की कृपा वा अपने पुरुषार्थ से) [इदानीम्] इस समय [उत्] और [प्रपित्वे] उत्तमता से ऐश्वर्य की प्राप्ति समय में [उत] और [अन्हाम] दिनों के [मध्ये] बीच [उत] और [सूर्यस्य] सूर्य के [उदिता] उदय में [उत] और (सायंकाल में) [भगवन्तः] बहुत उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (तथा) [देवानाम्] पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप्त लोगों की [सुमतौ] उत्तम प्रज्ञा (श्रेष्ठ मति) में [स्याम्] स्थिर हों (प्रवृत्त हों) ॥

५. भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥

ऋ० ७। ४१। ५॥

अर्थ—इस मन्त्र के अर्थ के लिये देखो पृष्ठ १२१॥